पंचसील-सिद्धंतो

[पंचशील-सिद्धांत]

:: सूत्रकार ::

पट्टाचार्य 108 श्री विशुद्धसागर जी यतिराज

:: प्राकृतानुवाद ::

श्रुतसंवेगी महाश्रमण श्री आदित्यसागर जी मुनिराज

:: प्रकाशक ::

समर्पण समूह

जैनं वचनं सदा वंदे

आशीषानुकंपा	:	गणाचार्य 108 श्री विरागसागर जी यतिराज
सूत्रकार	:	पट्टाचार्य 108 श्री विशुद्धसागर जी यतिराज
ग्रन्थ	:	पंचसील सिद्धंतो [पंचशील-सिद्धांत]
संपादन	:	श्रुतसंवेगी महाश्रमण श्री आदित्यसागर जी मुनिराज
प्राकृतानुवाद	:	श्रुतप्रिय श्रमणरत्न श्री अप्रमितसागर जी मुनिराज
पूर्णावलोकन	:	सहजानंदी श्रमणरत्न श्री सहजसागर जी मुनिराज
संस्करण	:	प्रथम : 1008 प्रति / 2025
प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान	:	समर्पण समूह, भारत सागर – 97552-86521 भोपाल – 91790-50222 जबलपुर – 98276-07171 इन्दौर – 98260-10104 इन्दौर – 94253-16840 भीलवाड़ा – 63766-49881
मुद्रक	:	गुरु आशीष ग्राफिक्स अंकित जैन शास्त्री, मड़देवरा, सागर मो. : 9755286521, 8302070717

शुभाशीष

भारत राष्ट्र की मिट्टी तीर्थंकरों और महापुरुषों के कारण धन्य-धन्य है। इन महान् विभूतियों से भारत देश को माँ कहलाने का गौरव प्राप्त है। **आदिनाथ से लेकर महावीरस्वामी, राम, कृष्ण, हनुमान आदि भारत वसुधा की गोद में ही खेले हैं।** इन लालों को देखकर निश्चितरूप से भारत भूमि कितनी आह्लादित होती होगी। उस काल में दूध-घी की नदियाँ बहती थीं। इन महापुरुषों के समय न कभी ताले थे, न ही हथियार। सभी प्राणी परस्पर हिलमिलकर रहा करते थे। इन दिनों का वर्णन हमारे इतिहास के पन्नों में आज भी जीवंत है।

वर्तमान परिवेश में इस धरा की चर्चा करना भी प्रासंगिक है। आज विश्व मृत्यु के द्वार पर दस्तक दे रहा है। परमाणु बमों के युग में किसी मनचले के अन्त:करण ने यदि करवट ले ली तो एक क्षण मात्र में राष्ट्र के राष्ट्र मौत के मुंह में समा जाएंगे। इस पहलू पर विचार करने की आवश्यकता है कि—क्या हम अणुबमों से विश्व बन्धुत्व की भावना को जन्म दे पायेंगे? यह देश **'सत्त्वेषु मैत्री'** का पाठ पढ़ाने वाला, जन्मदाता माना जाता है। जहाँ कभी **''जिओ और जीने दो''** का नारा गुंजायमान होता था, परन्तु आज की दशा यह है कि—समाचार-पत्र हिंसात्मक-दंगे, धार्मिक-उन्माद, चोरी और बलात्कार जैसे निंदनीय कृत्यों की खबरों से रंगे मिलते हैं।

तीर्थंकर के समयकाल का विस्तृत उल्लेख जिनागम में देखने को मिलता है। कालचक्र के प्रभाव से मानवों की मानवीय संवेदनाएँ शनैः शनैः समाप्त होती जा रही थीं। धर्म के नाम पर हिंसा का तांडव नृत्य, अबलाओं को अग्नि में सती के नाम पर, तो जातिवाद और पंथवाद के नाम पर निरीह

लोगों को सताया जाता था। ऐसे काल में निरीह मूक प्राणियों की आँखों के आँसू बेबस थे। इस भारत देश की पावन भूमि बिहार प्रान्त के वैशाली गणराज्य के कुण्डलपुर नगर में त्रिशला के यहाँ बालक वर्द्धमान (महावीर) का जन्म हुआ। मूक प्राणियों की आँखों के आँसू से लेकर नरक के नारकीय जीवों ने एक समय शांति की साँस ले ली। यहाँ यह दृष्टव्य है कि—जब तीर्थंकर का जन्म होता है, तो मानव से लेकर पशु-पक्षी और पेड़-पौधे अर्थात् प्रकृति भी आनंद से सराबोर हो जाती है। नरकों की स्थिति यह है कि—तीर्थंकर का जन्म होने का काल ही नरक के जीवों के लिए एक क्षणमात्र को शांति करा देता है।

ऐसे वर्द्धमान तीर्थंकर (महावीर स्वामी) ने बाल्य, किशोर अवस्था को पूर्ण कर ३० वर्ष की युवावस्था में स्वपर कल्याणी जैनेश्वरी दिगम्बर दीक्षा को धारण कर लिया। फिर कठोर तपस्या के माध्यम से निजात्मा के सद्स्वरूप कैवल्य को प्राप्त कर अपनी सर्वभाषामयी सर्वोदयी वाणी से जिन सूत्रों का (जो उपदेश पूर्ववर्ती २३ तीर्थंकरों ने दिया था, उन्हीं सूत्रों का) तीर्थंकर महावीर स्वामी ने सर्वजन हितार्थ उपदेश दिया। यह बात प्रामाणिक है कि—उन्होंने नवीन उपदेशों का सूत्रपात्र नहीं किया। इसी से स्पष्ट है कि—जिनशासन अनादि/सनातन से है। **ये सूत्र अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह हैं।** विश्व-शक्ति के जनक देश इन पंचशील सिद्धांतों पर अमल करने लग जाएँ, तो सम्पूर्ण आसक्तियाँ स्वत: समाप्त हो जाएँगी।

पंचशील सिद्धांत जन-जन तक अंतस् में प्रवेश करें तथा यह विश्व संदेश के रूप में सर्वव्यापी हो, इस भावना को लेकर **'पंचशील सिद्धांत'** कृति का सृजन गुरु-आशीष से स्व-पर कल्याणार्थ किया। इस पुस्तक में मेरा निजी कुछ भी नहीं है। तीर्थंकर देशना, जो आचार्य परम्परा से प्राप्त हुई है, वही पूर्वाचार्यों की वाणी इसमें समाविष्ट है।

इस लघुकाय बहुप्रमेय युत कृति को विशालता प्रदान करने का काम

किया है–प्राकृतमार्तंड श्रुतसंवेगी विनेयश्रमण मुनि श्री आदित्यसागर जी ने। आपने इस कृति का प्राकृतानुवाद करके भगवान् महावीर स्वामी के सिद्धांतों को सदियों के लिये सुरक्षित कर दिया है। आप इसी तरह आर्जव-मार्दव भावों के साथ भावीकाल में भी जैनवाङ्मय की अभिवृद्धि करते रहें; यही शुभाशीष।।

।। इति शुभं भूयात् ।।

26/03/2025 **पट्टाचार्य विशुद्धसागर मुनि**

समाधिभूमि, जालना

महाराष्ट्र, भारत

मम उद्‌गार

जैनधर्म एवं जैनदर्शन ही सनातन-धर्म है। जिसे न तो बनाया जाता है, न ही जिसे कोई मिटा सकता है, उसे **सनातन-धर्म** कहा जाता है। जैनदर्शन सनातन श्रमण संस्कृति को चाहे जिस तर्क की कसौटी पर घिसा जाये, चाहे जिस युक्ति के अस्त्र-शस्त्र से काटा जाये अथवा सत्य की भट्ठी में परीक्षित भी क्यों न किया जाये, तो भी वह सनातन-संस्कृति ही सिद्ध होगी।

इस सनातन-संस्कृति के मूल पाँच सिद्धांत हैं। जिन्हें सारी दुनिया पंचशील-सिद्धांत के नाम से जानती है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह; ये ही पंचशील हैं। न अन्य, न ही अन्यथा। इन पांचों सिद्धांतों में अहिंसा मूल है; शेष व्रत उसके रक्षणार्थ समझना चाहिये।

शान्ति का अमोघ-साधन है अहिंसा और हिंसा जीवन का खतरनाक मोड़ है। यह ऐसा मोड़ है जहाँ घुमाव है, फिसलन है और अंधेरा है। वस्तुतः हिंसा एक ऐसा रास्ता है जहाँ हर पल मौत का साया मंडराता रहता है। हिंसा मानवीयता, राष्ट्रीयता, सामाजिकता, विश्वबंधुत्व आदि सभी की संहारक है, जबकि अहिंसा समस्त आदर्शों एवं विश्वशांति की सर्वोपरि बोलती पुस्तिका है। अहिंसा का रास्ता न तो खतरनाक मोड़ है, न फिसलन है और न अंधकार है। ऐसे रास्ते पर व्यक्ति सहजता से आगे बढ़कर मंजिल तक पहुँच सकता है। **अहिंसा के दो अंग हैं–सापेक्षता और सह-अस्तित्व।** इसका सृष्टा है अनेकांत। आज संसार एक ऐसे मोड़ पर खड़ा है, जहाँ से आगे बढ़ने के लिए उसे अनेकान्त की जरूरत है। किसी व्यक्ति, वस्तु या घटना को भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखना और विरोधी युगलों में समन्वय स्थापित करना, यह अनेकान्त है और यही सापेक्षता सह-अस्तित्व का आधार है। अनेकान्त की बैसाखी के सहारे मनुष्य शांति की दिशा में प्रस्थान कर सकता है और शांति से जीवन यापन कर सकता है। अनेकांत को

नहीं समझा गया तो किसी भी समय विश्व-युद्ध भड़क सकता है। प्राणियों के लिये राष्ट्रवाद-प्रांतवाद को अहिंसा व अनेकांत मूलक धर्म की आधारशिला स्थापित करनी होगी।

अहिंसा आदि मूल सिद्धांतों का समावेश है यह लघुकाय विपुलप्रमेययुक्त कृति **''पंचशील-सिद्धान्त''। आध्यात्मिक साधक, प्राणी मात्र के प्रति दयावंत, शताब्दी देशनाचार्य, भक्तवत्सल, पूज्यपाद गुरुदेव विशुद्धसागर जी** की यह कृति सच में जन-जन के लिये बहूपयोगी है। प्रस्तुत कृति में आचार्य भगवन् ने आगम-प्रमाण एवं स्वचिंतन की गहनतम अवगाहना से पंचसूत्रों की बड़ी ही मार्मिक, हृदय को झकझोरने वाली, समता आनंददायिनी संकलित लेखनी सँजोयी है। अस्तु, **बेजोड़ अध्यात्म शैली से गूँथी यह कृति निश्चित ही पाठकों के लिये पठनीय एवं अनुकरणीय है।**

जब मैंने इस कृति का अवलोकन किया, तो मुझे लगा कि इस कृति का प्राकृतानुवाद होना चाहिये। और मैंने विदिशा में ग्रंथानुवाद प्रारंभ किया। गुरुदेव के आशीर्वाद से भोपाल में कार्य पूर्ण हुआ। **ममानुज गुरुदेव के प्रियाग्र शिष्य श्रुतप्रिय श्रमण अप्रमितसागर जी ने** कुशलता से इस ग्रन्थ का संपादन करके इस कृति को संवर्धित कर दिया है। सुधी पाठक इसे पढ़ें और जीवन में पंचशीलों को स्वीकार करके स्वात्मकल्याण करें। यही भावना है।।

।। णमो णमो सिद्ध-साहूणं ।।

03/04/2025 **विशुद्धपदाकांक्षी**

भक्तामरविधान, इंदौर **श्रुतसंवेगी महाश्रमण आदित्यसागर मुनि**

मेरा सिद्धांत

जीवन के सम्पूर्ण सुख और दुःख जीव को उसके जीवन जीने के सिद्धांतों के अनुसार ही प्राप्त हुआ करते हैं। **जीवन जीने का सिद्धांत अगर दूसरों को दुःखी करके सुखी रहने का हो तो निश्चित ही दुःखी होना पड़ता है,** क्योंकि यह विपरीत सिद्धांत है और **जीवन जीने का सिद्धांत अगर दूसरों को दुःखी देखकर सुखी करने का हो तो निश्चित ही सुखी जीवन मिलेगा,** क्योंकि यही सुखी होने का यथार्थ सिद्धांत है।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुये **मेरे परम श्रद्धा के केन्द्र, आराधनीय, पूज्यनीय, भव्यवत्सलभाव से संयुजित, सबके हृदयकमल पर भगवान की तरह ही विराजमान रहने वाले, पट्टाचार्य गुरुवर 108 श्री विशुद्धसागर जी यतिराज** ने अपने साधना में से अमूल्य समय निकालकर भगवान् महावीर स्वामी के द्वारा प्ररूपित पंचशील सिद्धांत पर ''**पंचशील सिद्धांत**'' नामक अनुपम कृति का सृजन किया है; जिससे भव्य जीवात्मायें इन सिद्धांतों के अनुसार जीवन जीकर सुखी हो सकें।

इस कृति को **प्राकृतमार्तंड, प्राकृतविद्या व्यसनी, प्राकृतविद्यागुरु, सर्वजनहितैषी साधक, श्रुतसंवेगी महाश्रमण 108 श्री आदित्यसागर जी महाराज** ने प्रकृति की भाषा प्राकृतभाषा में अनुवाद करके जिनशासन के श्रुतकोश की अभिवृद्धि कर महनीय कार्य किया है। आपके इस कृतित्व की मैं भूरी-भूरी प्रशंसा करता हूँ और भावना करता हूँ कि—आपकी तरह मैं भी श्रुतकोश की अभिवृद्धि करने में सक्षम बन सकूँ।

मेरा अहो! अहो! अहो! सौभाग्य कि– मुझ लघुश्रमण अल्पश्रुतधी को इस अमूल्य कृति का संपादन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

अंत में यही मंगलभावना है कि—**जैसे-जैसे अज्ञान हटता है, वैसे-वैसे ज्ञान बढ़ता है; मैं भी अपना संपूर्ण अज्ञान हटाकर कैवल्यज्ञान को प्राप्त करूँ।।**

आचार्य पदारोहण दिवस
31 मार्च 2025
इंदौर (म.प्र.) भारत ।

विशुद्धगुणाकांक्षी
श्रुतप्रिय श्रमण अप्रमितसागर

प्रस्तावना
जत्तो धम्मो, तत्तो विजयो
(जहाँ धर्म है, वहाँ विजय है)

हे पण्ण! अंतिम-तित्थेस-वड्ढमाणसामिणा महावीरसामिणा कोवि अहिणव-धम्मो णो आरंभिदो। जो अणादि-सणादणरूवेण गदिमाणो, जस्स पुव्वे तेवीस-तित्थयरेहिं भणिदं, तं वीर-पहुणा सगीय-देसणाए उत्तं।

हे प्रज्ञ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान भगवान् महावीर स्वामी ने कोई नया धर्म प्रारंभ नहीं किया। जो अनादि सनातन रूप से चला आ रहा है, जिसका पूर्व में 23 तीर्थंकर भगवन्तों ने कथन किया था, उसे वीर भगवान् ने अपनी देशना में कहा है।

णवि होदि धम्मारंभो। धम्मो दु अणादिणा अत्थि। किल वत्थु-सहावो धम्मो। सहावो केणचिदवि पुरिसकिदो णत्थि। सहावो दु सहावेण होदि, जहा अणल-सहावो उण्हत्तं, णीर-सहावो सीयलत्तं; तहेव आदसहावो णाणं दंसणं च अहिंसाधम्म-पालणं।

धर्म का प्रारंभ नहीं हुआ करता। धर्म तो अनादि से है। वस्तु-स्वभाव ही धर्म है। स्वभाव किसी से पुरुष-कृत नहीं हैं स्वभाव तो स्वभाव से ही होता है, जैसे अग्नि का स्वभाव उष्णता, जल का स्वभाव शीतलता है, उसी प्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञान दर्शन तथा अहिंसा-धर्म का पालन करना है।

इह वसुहाए जणमाणसा जदा आदधम्मं अहिंसादिं च विसरेंति; तदा लोए आसुरीवित्ती आरंभेदि, पसुवहादिं धम्मो मण्णंति, सम्मायार-विघादो जायदे; तदेव भगवद-जिणदेव-तित्थयर-जम्मणं होदि। ते सगीय-णिम्मल-णायग-केवल्लणाणेण अण्णाणी-जीवं सच्चत्थ-बोहं कारेंति। हिंसग-कम्मं पाव-णरयादि-दुग्गदि-हेदुं भासित्ता तेसिं पाव-पंकादो उच्चारेंति।

इस वसुधा पर जनमानस जब आत्मधर्म, अहिंसादि को भूल जाते हैं, तब लोक में आसुरीवृत्ति प्रारंभ हो जाती है, पशु-वध आदि को धर्म मान लेते हैं, सम्यक् आचार का विघात होने लगता है, तब भगवान् जिनदेव तीर्थंकर का जन्म होता है। वे अपने निर्मल ज्ञायक कैवल्यज्ञान के द्वारा अज्ञानी, भोले प्राणियों को सत्यार्थ का बोध कराते हैं। हिंसक-कर्म को पाप, नरक आदि दुर्गति का हेतु बतलाकर उन्हें पाप-पंक से उत्तीर्ण करते हैं।

महावीर-सामिणा सगीय-पीऊस-वाग-गंगाए भमिद-जणमाणसं अवगाहावित्ता णिम्मलेदि। सो अम्हे विसाल-सुत्तं देदि, जं विसाल-समायसत्थं च-'जीवेहि जीवावेहि य'। इदं सुत्तं सगम्हि वीससंति-विगास-आदसत्ति-जुत्तो वा। जीवेहि अयं सद्दो तुज्झ सगीय-अहिगार-बोहं कारेदि। जीवणं तुए सह पत्तेग-पाणिस्स जम्मसिद्ध-अहिगारो त्ति। जदिवि सो एगिंदियो होदु, पंचिदियो होदु वा पिपीलिया हत्थी वा होदु; पत्तेग-पाणी जीवणं इच्छेदि। तित्थयर-महावीर-सामिणा उत्तं-सगीय-अहिगार-रक्खणं कादव्वं। सगीय-अहिगार-लद्धीए पडिक्खणं जग्गेज्जा, णं अवरस्स अहिगारं बलादो गहणं अणुचिदं। अवर-अहिगार-हणणं पि हिंसाए सेणीए संगणेदि। अहिंसगा कस्सचिद अहिगारेहिं सह ण कीडेज्जा, तदेव ते अहिंसग-आदरिस-उत्तमणागरिग-समाय-रट्ठधम्म-सेवगा लावेंति।

भगवान् महावीर स्वामी ने अपनी पीयूष वाग् गंगा में भ्रमित जनमानस को अवगाहन कराके स्वच्छ किया है। उन्होंने हम सबको बहुत बड़ा सूत्र **''जियो और जीने दो''** दिया है, जो बहुत बड़ा समाजशास्त्र है। यह सूत्र अपने आप में विश्व शांति, विकास, आत्म-शक्ति से युक्त है। जीओ शब्द आपके लिये अपने अधिकार का बोध करा रहा है। जीना आपका ही क्या, प्रत्येक प्राणी का जन्म-सिद्ध अधिकार है चाहे वह एकेन्द्रिय जीव हो, चाहे पंचेन्द्रिय हो या वह चींटी या हाथी हो, प्रत्येक प्राणी जीना चाहता है। तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी ने कहा है कि अपने अधिकार की रक्षा करना चाहिए। अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रतिक्षण तैयार रहना चाहिए, परन्तु दूसरे का अधिकार छीनना नहीं चाहिए। दूसरे के अधिकारों का हनन करना भी हिंसा की कोटि में ही आता है। अहिंसक बन्धुओं को चाहिए कि किसी के अधिकारों के साथ खिलवाड़ न करें, तभी वे अहिंसक, आदर्श और श्रेष्ठ नागरिक, समाज और राष्ट्र-धर्मसेवी कहला पाएँगे।

इदर-सुत्तं 'जीवावेहि' पत्तेग-माणवं सगीय-कत्तव्व-बोहं कारेदि। जीवणं तुज्झ अहिगारो, अवर-पाणीणं जीवण-दाणं तुज्झ कत्तव्वं। जीव-पीडणं सव्वदा अणुचिदं। भट्टारग-महावीरसामिणा इमम्हि सुत्ते अपुव्वरहस्सं पूरियं। अहिगारेण सह कत्तव्वपालणं उत्तमणागरिग-चिण्हं तहा कत्तव्वेण सह जो अहिगारं च पस्सेदि, सो माणुयरूवे भगवं अत्थि।

दूसरा सूत्र 'जीने दो' प्रत्येक मानव को अपना कर्तव्य बोध करा रहा है। जीना तेरा अधिकार है तो दूसरे प्राणियों को जीने देना तेरा कर्तव्य है। किसी भी जीव को सताना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। तीर्थंकर महावीर स्वामी ने इस सूत्र में अपूर्व रहस्य भर

दिया है। अधिकार के साथ कर्तव्य पालन करना श्रेष्ठ नागरिक की पहचान है तथा कर्तव्य के साथ अधिकार पर दृष्टिपात जो करता है वह इंसान के रूप में भगवान् है।

महावीरसामिणा वीसकल्लाणदिट्ठीए सव्वोदय-तित्थपवट्टणं किदं। तं जहा उत्तं समंतभद्द-सामिणा

सर्वान्त वत्तद् गुण मुख्य कल्पं, सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम्।
सर्वाऽऽपदामन्तकरं निरन्तं, सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव।।[1]

भगवान् महावीर स्वामी ने विश्व-कल्याण की दृष्टि रखते हुए सर्वोदय तीर्थ का प्रवर्तन किया था। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने 'युक्त्यानुशासन' ग्रन्थ में भगवान् महावीर स्वामी की स्तुति करते हुए लिखा है—

अर्थ—वीर भगवान् ! आपका तीर्थ, प्रवचन रूप शासन अर्थात् परमागम वाक्य, जिसके द्वारा संसार महासमुद्र को तिरा जाता है, सर्वान्तवान है। सामान्य विशेष, द्रव्य पर्याय, विधि निषेध, एक अनेक आदि अशेष धर्मों को, गौण तथा मुख्य की कल्पना को साथ में लिए हुए है। एक धर्म मुख्य है तथा दूसरा धर्म गौण, इसी से सुव्यवस्थित है। उसमें असंगत अथवा विरोध के लिए कोई अवकाश नहीं है। जो शासन (वाक्य) धर्मों में पारस्परिक अपेक्षा का प्रतिपादन नहीं करता, उन्हें सर्वथा निरपेक्ष बतलाता है, वह सर्वधर्मों से शून्य है। उसमें किसी भी धर्म का अस्तित्व नहीं बनता, न उसके द्वारा पदार्थ-व्यवस्था ही ठीक बैठ सकती है। अतः आपका ही यह शासन-तीर्थ सर्व दुःखों का अन्त करने वाला है, निरन्तर है, किसी भी एकांतदर्शन के द्वारा खण्डनीय नहीं है और यही सब प्राणियों के अभ्युदय का कारण तथा आत्मा के पूर्ण अभ्युदय (विकास) का साधक सर्वोदय तीर्थ है।

अह जेण्ह-दंसणपक्खो—

दिट्ठीए अणेयंतो, सइलीए सियवादो तहा चरियाए अहिंसा जेण्ह-दंसणस्स मूलसिद्धंतो। पदत्थं वत्थुं च अणेग-धम्मप्पगं। अणेगधम्मा अवगमणत्थं णयावलंबणं परमावस्सगं। अणेयंतं सियवादेण जाणिज्जदे। वत्थुदो सयल-लोगववहारो सियवादेण एव गदिमाणो। कज्जाणि सियवादेण एव होंति, इदं सच्चं; जदिवि सियवाद-अत्थं ण बुज्झदु तस्स परिभासा वि णो बुज्झेदु। तं जहा अत्तमीमंसागंथे पण्णत्तं—

1. युक्त्यानुशासन श्लोक—62।

स्याद्वादः सर्वथैकान्त, त्यागात् किंवृत्त चिद्विधिः।
सप्तभंगनयापेक्षो, हेयादेय-विशेषकः॥[1]

जैन दर्शन पक्षः—

दृष्टि में अनेकांत, शैली में स्याद्वाद और चर्या में अहिंसा जैनदर्शन का मूल सिद्धांत है। पदार्थ/वस्तु अनेक धर्मात्मक है। अनेक धर्मों को समझने के लिए नय का आलम्बन परमावश्यक है। अनेकांत को स्याद्वाद के द्वारा समझा जाता है। वस्तुतः सर्व लोक-व्यवहार स्याद्वाद के माध्यम से ही चल रहा है। हाँ यह अवश्य हो सकता है कि मुझे स्याद्वाद का अर्थ मालूम न हो, परिभाषा मालूम न हो, पर यह सत्य है कि कार्य स्याद्वाद से ही चल रहे हैं।

आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने आप्तमीमांसा ग्रन्थ में स्याद्वाद को समझाते हुए बहुत सुन्दर कारिका लिखी है—

अर्थ—सर्वथा एकांत का त्याग करके कथंचित् विधान करने का नाम स्याद्वाद है। यह सात भंगों और नयों की अपेक्षा रखते हुए हेय और उपादेय के भेद को भी बतलाता है। हेय यानि छोड़ने योग्य, उपादेय यानि ग्रहण करने योग्य।

जो वत्थुणो अंसकहणं करेदि, सो णयो। जं वत्थुणो सव्वंसकहणं करेदि, तं पमाणं। सगपरग्गाही-णाणमेव पमाणं। सिया कहंचिद अवेक्खाकिदा। वादो सइली पद्धदी कहण-कला वा। अवेक्खाकिद-कहणसइली सियवाद-सइली। भंगा सत्त, तम्हा तं सत्तभंगी वि भासदे। णणु किमु भंगा सत्त एवं होंति? उत्तं च–''प्रश्नवशादेकस्मिन् वस्तुन्यविरोधेन विधि प्रतिषेध-विकल्पना सप्तभंगी।''[2]

नय—जो वस्तु के एक अंश का कथन करता है, वह नय है।

प्रमाण—जो वस्तु के सर्व अंशों का कथन करता है, वह प्रमाण कहलाता है। स्व पर ग्राही ज्ञान ही प्रमाण है।

स्याद्—कथंचित् अपेक्षाकृत।

---

1. **आप्तमीमांसा, श्लोक–104।**
2. **तत्त्वार्थ राजवार्तिक, सूत्र–5/1/6/33।**

वाद—शैली, पद्धति, बोलने का ढंग। अपेक्षाकृत बोलने की शैली को स्याद्वाद की शैली कहते हैं। भंग सात होते हैं, इसलिए इसे सप्त-भंगी भी कहते हैं।

सात भंग ही क्यों होते हैं? ऐसा प्रश्न करने पर भट्ट अकलंक स्वामी कहते हैं—''प्रश्न के अनुसार एक वस्तु में प्रमाण रूप अविरुद्ध विधि प्रतिषेध धर्मों की कल्पना सप्तभंगी है।''

सिय-अत्थि, सिय-णत्थि, सिय-अत्थि-णत्थि, सिय-अवत्तव्वं, सिय-अत्थि-अवत्तव्वं, सिय-णत्थि-अवत्तव्वं, सिय-अत्थि-णत्थि-अवत्तव्वं; एवं णेया सत्तभंगा। जहा किं रामो पुत्तो एव अत्थि? णो रामो पुत्तो वि अत्थि, पिदू वि अत्थि, भाऊ वि अत्थि, पदी वि अत्थि। एगस्सिं रामे हि अणेगधम्मसंबंधा संति, णं ते सव्वे सावेक्ख-संबंधा, ण दु णिरवेक्ख-संबंधा। जदि णिरवेक्खा होस्संति दु लोगविवत्था एव णस्सेहिंति। रामो सगीय-पिदु-दहरहावेक्खाए पुत्तो, सगीय-पुत्तलवकुसावेक्खाए पिदू वा। एवंविह सेसा संबंधा णादव्वा।

स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति, स्याद् अस्ति-नास्ति, स्याद् अवक्तव्य, स्याद् अस्ति अवक्तव्य, स्याद् नास्ति अवक्तव्य, स्याद् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य; इस प्रकार से सप्तभंगी जानना चाहिए। जैसे राम बेटा ही है क्या? नहीं, राम बेटा भी है, राम पिता भी है, राम भाई भी है, राम पति भी है। एक ही राम में अनेक धर्म-संबंध पाए जाते हैं, पर वे सभी सापेक्ष संबंध हैं, निरपेक्ष नहीं। यदि निरपेक्ष हो जाएंगे तो लोक व्यवस्था ही बिगड़ जाएगी। राम अपने पिता दशरथ की अपेक्षा से बेटा है, अपने बेटे लव-कुश की अपेक्षा से पिता है। इसी प्रकार शेष संबंध लगा लेना चाहिए।

महावीरसामी-कहिद-सासय-पंचसील-सिद्धंते पढमं जाणेज्जा किमु सीला पंच एव? कारणं कुसील-पावाणि य पंचविहाणि। पावाणि अणंता, जावदिया जीवे विगारभावा, तावदियाणि होंति पावाणि। णं मुक्खदो पंच एव। इमेसु पंचसु भेदेसु अणंतपावाणि समाविट्ठाणि। पावं जीवसीलो णत्थि। पंचपाव-विवरीदा पंचसीला। सीलो, सहावो, धम्मो, पयडी, णेसग्गिगो एगत्थवायी। हिंसा-असच्च-चोरिय-अबंभसेवण-गंथसंचयभावा य पंचपावाणि। इमाणि एव कुसीला भासदे। सामण्णदो अबंभसेवणं लोए कुसीलो उत्तो, णं जो आदधम्मादो कुच्छिदमग्गं पडि णेदि सो सव्व-कुसीलो।

भगवान् महावीर स्वामी के द्वारा कथित शाश्वत पंचशील सिद्धांत में सर्वप्रथम यह समझना है कि शील पाँच ही क्यों? कारण, कुशील कहें या पाप, पापों के प्रकार पाँच हैं। वैसे पाप तो अनंत होते हैं, जितने प्रकार के जीव में विकार भाव होते हैं, उतने पाप होते हैं। परन्तु मुख्यतः पाँच हैं। इन पाँच भेदों में अनंत पाप समाविष्ट हैं। पाप करना जीव का शील नहीं है। पाँच पापों के विपरीत पाँच शील हैं। शील, स्वभाव, धर्म, प्रकृति, नैसर्गिक; ये सब एकार्थवाची शब्द हैं। हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्म-सेवन, परिग्रह का संचय करना; ये पाँच पाप हैं। इन्हें ही कुशील कहा जाता है। सामान्यतः अब्रह्म सेवन को लोक में कुशील कहा है,परन्तु जो आत्मधर्म से कुत्सित मार्ग की ओर ले जाए, वह सब कुशील है।

इमा पंचसीला जिणिंददेवेण उहभागेसुं विभजिदं। पढमो महव्वदरूवे, इदरो अणुव्वद-रूवे। पुण्णदो णवकोटीदो पंचपावचागो महव्वदं। महव्वदाणं साहुसमणजणा पालंति तहा एगदेस-थूलरूवेण पंचपावचागो अणुव्वदं च। अणुव्वदाणं सावगा गिहत्थजणा य पालेंति। इमेसिं महव्वदाणं अणुव्वदाणं च धारणपालणादो एव वीसे संती जादिस्सदि। परमाणु-सत्थेहिं कदावि वीसे संती ण होसी, णेव होहिदि।

इन पंचशीलों को भगवान् जिनेन्द्र देव ने दो भागों में विभक्त किया है। प्रथम महाव्रत के रूप में, दूसरा अणुव्रत के रूप में। पूर्णतः नव कोटि से पाँच पापों के त्याग करने को महाव्रत कहा है। महाव्रतों का पालन साधु-पुरुष/मुनिजन करते हैं तथा एक-देश/स्थूल-रूप से जो पाँचों ही पापों का त्याग किया जाता है; वह अणुव्रत कहलाता है। अणुव्रतों का पालन श्रावक (गृहस्थ) करते हैं। इन महाव्रतों और अणुव्रतों के धारण एवं पालन करने से ही विश्व में शांति आयेगी। अणुबमों से न कभी विश्व में शांति हुई, न ही होगी।

अदो, पत्तेगजीवं महव्वद-अणुव्वदासयं गेण्हेदव्वं। पढमसीलस्स अहिंसाए वावगरूवेण जावदियं वण्णणं अरुहपवयणे त्थि, तहेव अण्णत्थ ण लभदे। णूणं आदपरिमाणाणं हिंसाए एव इमा सयलहिंसा। सेसाणि पावाणि असच्चवयणादीणि केवल-सिस्साणं बोहणत्थं भासेंति। अदो जत्थ होदि अहिंसा-धम्मस्स सुहुमावत्था-णाणं, तत्थ सयलधम्मा सयमेव आगमेंति। णं बालबुद्धिजणा एगसुत्तेण ण जाणंति, ण बुज्झेंति। तेसिं बोहणत्थं पंचसुत्तवण्णणं तित्थयर-देसणाए त्थि।

अतः, प्रत्येक जीव को अणुव्रत/महाव्रत का आश्रय लेना चाहिए। प्रथम शील अहिंसा का व्यापक स्वरूप से जितना वर्णन अर्हत् प्रवचन में है, वैसा अन्यत्र प्राप्त नहीं

होता। वास्तव में आत्मा के परिणामों की हिंसा होने के कारण से यह सब ही हिंसा शेष पाप असत्य वचनादि केवल शिष्यों को बोध कराने के लिए कहे गये हैं। अतः जहाँ अहिंसा-धर्म की सूक्ष्मावस्था को समझ लिया जाता है, वहाँ सम्पूर्ण धर्म स्वयमेव आ जाते हैं, परन्तु बाल बुद्धिजन एक सूत्र के माध्यम से समझ नहीं पाते। उन्हें समझने के लिए पाँचों ही सूत्रों का वर्णन तीर्थंकरों की देशना में आया है।

[1]
अहिंसा
(अहिंसा)

- **विणप्पा! धम्मादो सुहसमूहलद्धी। तम्हा कुण धम्माकंखं ण दु सुहाकंखं। अहिंसाधम्म-धारणेण विणा णो सुहं णेव संती॥1॥**

  विज्ञात्मन् ! धर्म से सुख-समूह की प्राप्ति होती है। इसलिए सुख-इच्छा नहीं, अपितु धर्म-इच्छा कर। बिना अहिंसा-धर्म को धारण किए न सुख है, न ही शांति।।1।।

- **अहिंसावद-रक्खणत्थं पढमं जदण-पुव्वगं मज्ज-मंस-महु-पंचोदुंबरफलं च मुंचेज्जा॥2॥**

  अहिंसा-व्रत की रक्षा हेतु सर्वप्रथम प्रयत्नपूर्वक मदिरा, मांस, मधु तथा पाँच उदुंबर फल छोड़ देना चाहिए।।2।।

- **मज्जं मणं पमुच्छेदि। मोहिद-पुरिसो धम्मं विसरेदि। धम्मं विम्हरगो जीवो किंचिदवि संकाए विणा हिंसायरणं करेदि॥3॥**

  मदिरा, मन को मूर्छित/बेहोश कर देती है। मोहिनी चित्त वाला पुरुष धर्म को भूल जाता है। धर्म को भूला हुआ जीव बिना किसी प्रकार की शंका के हिंसा का आचरण करता है।।3।।

- **मज्जं दूसिद-फलपुप्फेहिं णिव्वत्तेदि, जम्हि होदि असंख-जीवोप्पत्ती॥4॥**

  शराब सड़े-गले फल-फूलों से तैयार की जाती है, जिसमें असंख्यात जीवों की उत्पत्ति हो जाती है।।4।।

- **मज्जसेविं हेयोवादेय-विवेगं समत्तेदि। कदावि मादुं कलत्तं भासदे, कदावि कलत्तं मादू। सो विम्हरेदि लोग-मज्जादं चावि। एवं कदा कदा तस्स मुहे कुक्कुरा वि मुत्तं करेंति॥5॥**

  मद्यपायी को हेय-उपादेय का विवेक समाप्त हो जाता है। कभी माँ को पत्नी कहता है, कभी पत्नी को माँ। वह लोक-मर्यादा को भी विस्मृत कर देता है। और तो और कभी-कभी कुत्ते भी उसके मुख में पेशाब कर जाते हैं।।5।।

अहिमाण-भय-गिलाणि-हस्स-दुह-सोग-कामवासणा-कोहादिगा सव्वे दुग्गुणा कसाया वा। एदे सव्वे हिंसाए एगत्थी-सद्दा एवं सव्वे मज्ज-समीवत्था॥6॥

अभिमान, भय, ग्लानि, हास्य, दुःख, शोक, कामवासना, क्रोध आदि सभी दुर्गुण अथवा कषाय हैं। ये सभी हिंसा के पर्यायवाची शब्द हैं और सभी मदिरा के निकटवर्ती हैं।।6।।

- **मज्जसेवणं तु पढमहिंसा एव, तेण उप्पण्णभाव-उत्तरपउत्तीओ वा हिंसप्पगाओ। तम्हा जे दुब्बुद्धी मज्जं ण चत्तेंति, ते महापावी॥7॥**

  मदिरापान तो सर्वप्रथम हिंसा है ही। उससे होने वाले भाव और उत्तर प्रवृत्तियाँ हिंसात्मक हैं। इसलिए जो दुर्बुद्धि मदिरा का त्याग नहीं करते, वे महापापी हैं।।7।।

- **एत्थ मज्जदो मेत्तं मज्जं णेव गेण्हेज्जा। मज्जेण सह जावदिया वि मादग-पदत्था, ते सव्वे गेण्हेज्जा। बीडी-सुरदी-चरस-गुडखा-णस्सकम्मा, एदे सव्वे पदत्था विवेगणाण-णासगा तहा अभक्खा वि॥8॥**

  यहाँ मदिरा से तात्पर्य मात्र शराब ग्रहण ही नहीं समझना। शराब के साथ जितने भी मादक पदार्थ हों, वे सभी ग्रहण करना। बीड़ी, तम्बाकू, चरस, गुटखा नस्यकर्म; ये पदार्थ विवेक-ज्ञान को नष्ट करने वाले हैं और ये सभी पदार्थ अभक्ष्य हैं।।8।।

- **'अहिंसा परमो धर्मः' इदि सुत्त-णादगा मंसभक्खणं कदावि ण कुज्जा॥9॥**

  ''अहिंसा परमो धर्मः'' का नाद करने वाले प्राणियों को माँस-भक्षण कभी नहीं करना चाहिए।।9।।

- **मंसं किं पदत्थं? मंसं तसजीवस्स अब्भंतरदेह-पिंडो, तम्हा जं वत्थुं सक्खं तसजीवाणं देहपिंडं, तं जीववहं विणा ण णिव्वत्तेदि। अहो मंस-भुंजगेण णियमेण होदि हिंसा॥10॥**

  माँस क्या पदार्थ है? इसका विचार करने से जाना जाता है कि माँस त्रस जीव का भीतरी शरीर पिण्ड है। इसलिए जो वस्तु साक्षात् त्रसजीवों के शरीर का पिण्ड है वह बिना जीववध के तैयार नहीं हो सकती। अतः माँस सेवन करने वाले से हिंसा अनिवार्य ही होती है।।10।।

- **किंचण अण्णाणीजणा सगं अहिंसगा घोसंते। ते भासंते-'जीवाणं हं ण मारेमि, णं मिदस्स मंसं भक्खेमि।' ते वि हिंसगा। णवरि अवर-मिच्चू तम्हि तुज्झ अणुमोदणा। किद-कारिद-अणुमोदणं च तिण्णि सरिसपावाहिगारी य॥11॥**

  कुछ अज्ञानी अपने आपको अहिंसक घोषित करते हैं। कहते हैं कि—'मैं स्वयं जीवों को नहीं मारता, परन्तु मृतक का माँस खाता हूँ। वे भी हिंसक हैं। क्योंकि दूसरे की मौत है उसमें तेरी अनुमोदना है। कृत, कारित, अनुमोदना करना, तीनों बराबर पाप के भागीदार हैं।।11।।

- **जदि केई भासे- जो पसू सयमेव मरेदि, तस्स मंस-सेवणं करेंति, पुणरवि तं पि अणुचिदं। एसो जीवो वि हिंसगो। तस्स मंसस्स आसिदाणं सुहुम-णिगोदजीवाणं घादो होदि॥12॥**

  यदि कोई ऐसा कहे कि—जो पशु स्वयं मर गया है उसका माँस सेवन करते हैं, तो वह भी उचित नहीं है। ऐसा करने वाला भी हिंसक है। उस माँस के आश्रित सूक्ष्म निगोदिया जीव का घात होता है।।12।।

- **अपक्क-पक्क-मंससेवणादो हिंसा एव होदि। वत्थुदो दोसुं ताए जादीए णिगोदजीवा पडिक्खणं विणस्संति। एरिसाए ठिदीए मंससेवणं मंसफासणं चावि हिंसा एव त्थि। अहिंसगं सव्वविह-मंससेवणस्स चागो कादव्वं॥13॥**

  चाहे माँस कच्चा हो अथवा पका, दोनों प्रकार के माँस सेवन से हिंसा होती है। वस्तुतः दोनों में उसी जाति के निगोदिया प्रतिक्षण नष्ट होते रहते हैं। ऐसी स्थिति में माँस सेवन करना तो दूर की बात है, उसका स्पर्श करना भी हिंसा है। अहिंसक को सभी प्रकार के माँस के सेवन का त्याग करना ही चाहिए।।13।।

- **अहिंसाधम्म-रक्खणत्थं मज्ज-मंसमिव महुसेवणं पि णो कादव्वं। एदे तिण्णि मगारा हेया॥14॥**

  अहिंसा-धर्म की रक्षा हेतु मदिरा, माँस के समान मधु का भी सेवन नहीं करना चाहिए। ये तीनों ही मकार हेय हैं।।14।।

- **सत्तग्गाम-दहणे जा हिंसा होदि, महुस्स एगबिंदुसेवणे सो एव हिंसादोसो होदि॥15॥**

  सात ग्राम जलाने में जो हिंसा होती है, वही हिंसा का दोष लगता है शहद की एक बूँद के सेवन करने में।।15।।

- **महू महु-मक्खिगाणं मलमुत्तमिस्सदो तेसिं मिददेह-मिस्सिदो होदि। हिंसगा छत्तं (महुमक्खिगा-गेहं) अग्गि-णीरादीदो णासेदूणं महुं णिक्कासेंति, जम्हि असंखजीवहिंसा होदि। अदो महूवओगं ओसहे वि ण कुज्जा॥16॥**

  शहद मधु-मक्खियों के मल-मूत्र तथा उनके मृत शरीर से मिश्रित होता है। हिंसक लोग छत्ते को अग्नि और पानी आदि से नष्ट करके शहद निकालते हैं, जिसमें असंख्यात जीवों की हिंसा होती है। अतः शहद का उपयोग औषधि में भी नहीं करना चाहिए।।16।।

- **महू महु-मक्खिगा-वमणं। किं कोवि सब्भो वमण-सेवणं करेहिदि?॥17॥**

  शहद मधु-मक्खियों का उगाल है। क्या कोई सभ्य उगाल का सेवन करेगा?।।17।।

- **जो छत्तादो सयमेव पदिदमहुसेवणं च करेदि, सो वि हिंसगो। णवरि तस्स आसिदजीवा वि णस्संति॥18॥**

  जो छत्ते से स्वयमेव गिरे हुए मधु का सेवन करता है, वह भी हिंसक है। कारण, उसके आश्रित रहने वाले सभी जीव नष्ट हो जाते हैं।।18।।

- **मज्ज-मंस-महु-णवणीदा, एदे चदुमहाविगिदिजुदा पदत्था। वदीजणा इमेसिं चदुण्हं हि चागेदव्वा॥19॥**

  मद्य, माँस, मधु, मक्खन ये चार महान् विकृति वाले पदार्थ हैं। व्रतीजनों को इन चारों का ही त्याग करना चाहिए।।19।।

- **जदिवि णवणीदो अंतोमुहुत्त-पज्जंतं सुद्धो, णं मज्जादाए बहि पंचिंदिए-सम्मुच्छणजीवा पिंडो हविज्जदे तहा महाविगारकारणादो णवणीदसेवणं ण कादव्वं॥20॥**

  यद्यपि मक्खन अन्तर्मुहूर्त तक शुद्ध होता है, परन्तु मर्यादा के बाहर पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन जीवों का पिण्ड हो जाता है तथा महाविकार का कारण होने से मक्खन का सेवन नहीं करना चाहिए।।20।।

- **ऊमर-कढूमर-पागर-बड-पीवलादि-फलेसुं तसजीवा जायंते तहा मरणं भजेंति। अदो अहिंसाधम्मपालगं उत्तफलाणं चागं पुण्णदो कादव्वं॥21॥**

  ऊमर, कठूमर, पाकर, बड़, पीपल फलादि में त्रस जीव उत्पन्न होते हैं तथा मृत्यु को प्राप्त होते हैं। अतः अहिंसा-धर्म-पालक को उक्त फलों के सेवन का पूर्णतः त्याग करना चाहिए।।21।।

- **धम्मो अहिंसारूवो त्थि। इदं संजाणित्ता वि जदि कोवि पुरिसो थावरहिंसणं चागे असमत्थो दु सो तसजीवहिंसणं तु मंचेज्जा।।22।।**

  धर्म अहिंसा-रूप है। इस बात को भली प्रकार से जानकर भी कोई पुरुष यदि स्थावर हिंसा को छोड़ने में असमर्थ है तो वो कम से कम त्रस हिंसा को तो छोड़ दे।।22।।

- **सुसावगा विहा थावरहिंसणं पि ण कादव्वा।।23।।**

  सद् श्रावकों को चाहिए कि व्यर्थ में स्थावर हिंसा को भी न करें।।23।।

- **अहिंसाधम्म-रक्खणत्थं तहा सगीय-आरोग्ग-दिट्ठीए सावगा रयणीए भोयणचागं सव्वहा कादव्वा।।24।।**

  अहिंसा-धर्म की रक्षा हेतु तथा अपने स्वास्थ्य की दृष्टि से श्रावकों को रात्रि में भोजन का त्याग सर्वथा करना चाहिए।।24।।

- **आदिच्चपयासाभावे सुहुमतसजीवाणं तिव्ववड्ढि-उप्पत्ती य होदि तहा ते भोज्जसामग्गीए मेलेदूणं मरंति। जेण भोयणं वित्तं होदि तहा होदि जीवहिंसा वि। जदि कोवि भासे- रयणीए दीव-विज्जुदजंतादि-पयासे भोयणे णो हिंसा दु तस्स अयं तक्को विहा। जो आदिच्चपयास-पहावो होदि, सो दीव-विज्जुदजंतस्स पहावो णो होदि। दीवविज्जुद-जंतस्स किट्टिम-पयासे अहिगजीवरासी जायदे। चंदसीयलदाए जीवेसुं वड्ढिसंचारो होदि। अदो किट्टिमपयासे भोयणस्स पुण्णदो णिसिद्धो त्ति।।25।।**

  सूर्य-प्रकाश के अभाव में सूक्ष्म त्रस जीवों की तीव्र वृद्धि तथा उत्पत्ति होती है और वे भोज्य-सामग्री में मिश्रित होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। परिणाम-स्वरूप भोजन विषाक्त हो जाता है तथा जीव-हिंसा भी होती है। यदि कोई यह तर्क दे कि

रात्रि के समय दीपक, बल्ब आदि के प्रकाश में भोजन करने में हिंसा नहीं होती है तो उसका यह तर्क व्यर्थ है। जो सूर्य-प्रकाश का प्रभाव होता है वह दीपक अथवा बल्ब का नहीं हो सकता। दीपक तथा बल्ब के कृत्रिम प्रकाश में अधिक जीव राशि उत्पन्न होती है। चन्द्रमा की शीतलता से जीवों में वृद्धि का संचार होता है। अतः कृत्रिम प्रकाश में भोजन करना पूर्णतः निषिद्ध है।।25।।

- **दिवसे वि जत्थ उचिदपयासो ण होदु, तत्थ दिवसे भोयणं ण कादव्वं। दिवस-णिम्मिद-भोयणं रयणीए तहा रयणी-णिम्मिद-भोयणं दिवसे ण कादव्वं।।26।।**

  दिन में उचित प्रकाश जिस स्थल पर न हो वहाँ दिन में भोजन नहीं करना चाहिए। दिन का बना भोजन रात्रि में और रात्रि का बना भोजन दिन में नहीं करना चाहिए।।26।।

- **णिच्छएदूणं कसायसहिद-मणवयणकायदो दव्वभावरूप पाण-विणासणं हिंसा।।27।।**

  निश्चय करके कषाय सहित मन, वचन, काय से द्रव्य और भाव रूप प्राणों का नष्ट करना हिंसा है।।27।।

- **दिवसे भोयणेण अणेगाणेग-लाहा संति। इमेण जीवहिंसाए जीवा सुरक्खेंति, पायणसत्ती सुद्धु होदि। जेसिं णियमो दिवाभोयणस्स, तेसिं सुज्जत्थस्स घडिगा-वे-पुव्विं भोयणं कुज्जा तहा सुज्जोदयस्स वे-घडिगा-पच्छा हि भोयणं आरंभेज्जा।।28।।**

  दिन में भोजन करने से अनेकानेक लाभ हैं। इससे जीवों की हिंसा से बचते हैं, पाचन-शक्ति ठीक रहती है। दिन में भोजन करने का जिनका नियम है उन्हें सूर्यास्त के दो घड़ी पूर्व में भोजन कर लेना चाहिए तथा सूर्योदय के दो घड़ी अर्थात् 48 मिनिट बाद ही भोजन प्रारंभ करना चाहिए।।28।।

- **पमत्तजोगादो पाणविजोगकरणं हिंसा॥29॥**

  प्रमाद के योग से प्राणों का वियोग करना हिंसा है।।29।।

- **हिंसा चदुव्विहा। संकप्पिणी विरोहिणी आरंभिणी उज्जोगिणी चेदि। सग्गेहत्थस्स संकप्पी-हिंसणं ण कुणेदु॥30॥**

  संकल्पिनी, विरोधिनी, आरंभिणी, उद्योगिनी ये चार प्रकार की हिंसा हैं। सद्गृहस्थ के लिए संकल्पी हिंसा नहीं करना चाहिए।।30।।

- **समणा साहुविंदा चदुव्विह-हिंसाए चागी होंति॥31॥**

  मुनिजन, साधुवृन्द चारों प्रकार की हिंसा के त्यागी होते हैं।।31।।

- **रागादिग-भावाणं पयडीकरणं हिंसा॥32॥**

  रागादिक भावों का प्रकट होना हिंसा है।।32।।

- **रागादिग-भावाणं अभावो सच्चरूवेण अहिंसा। इदं जेण्ह-सिद्धंतस्स सारभूत-रहस्सं॥33॥**

  रागादिक भावों का न होना सत्यरूप से अहिंसा है। यह जैन सिद्धांत का सारभूत रहस्य है।।33।।

- **जत्थ पमादो तत्थ हिंसा, जदिवि जीवो मरेदु वा ण मरेदु॥34॥**

  जहाँ प्रमाद है वहाँ हिंसा है, चाहे जीव मरे या न मरे।।34।।

- **अप्पमत्तजीवो हि अहिंसगो॥35॥**

  अप्रमत्त जीव ही अहिंसक है।।35।।

- **आदा सकसायत्तेण पढमो सगीय-हिंसणं करेदि, सो पच्छा इदरजीवहिंसणं करेदु वा ण करेदु॥36॥**

  आत्मा कषाय सहित होता हुआ पहले अपने आपकी ही हिंसा कर डालता है, वह पीछे दूसरे जीव की हिंसा करे या न करे।।36।।

- **अहिंसा परमो बंभो॥37॥**

  अहिंसा ही परम ब्रह्म है।।37।।

- **जत्थ हिंसाए पउत्ती, तत्थ दु हिंसा; णं जत्थ हिंसा-पउत्ती णत्थि, किण्णु हिंसाविरत्ती वि णत्थि, तत्थ वि होदि हिंसा। अदो बुद्धिपुव्वगं अहिंसाधम्मपालणं सेयोकरं॥38॥**

  हिंसा में प्रवृत्ति है, वहाँ तो हिंसा होती है, परन्तु जहाँ पर हिंसा करने की वृत्ति नहीं है, पर हिंसा से विरक्ति (त्याग) भी नहीं है, वहाँ भी हिंसा होती है। अतः बुद्धिपूर्वक अहिंसा-धर्म का पालन करना श्रेयस्कर है।।38।।

- **परिणामविसोहीए हिंसाणिमित्ताणं पि चएज्जा। अहिंसाधम्म-रक्खणत्थं अयं आवस्सगो॥39॥**

  परिणामों को विशुद्ध रखने के लिए हिंसा के निमित्त-कारणों का भी त्याग कर देना चाहिए। अहिंसा-धर्म की रक्षा हेतु यह आवश्यक है।।39।।

- **बहि-अहिंसाधम्म-पालणं विणा अब्भंतर-अहिंसा-धम्मो णो पयडेदि॥40॥**

  बिना बाह्य अहिंसा-धर्म पालन के अंतरंग अहिंसा-धर्म प्रकट नहीं होता है।।40।।

- **जो अब्भंतर-अहिंसाए णिम्मलो, सो ववहारे जीववहं ण करेज्जदि॥41॥**

  जो अंतरंग अहिंसा से निर्मल है, वह व्यवहार में किसी भी जीव का वध नहीं कर सकता।।41।।

- **सो पुरिसो वंचगो, जो सग-पर-वहं करेदि तहा भासेदि- भावेहिं अहिंसगोहं। एसो पुरिसो दु जिणमद-बहिद्धा॥42॥**

  वह पुरुष वंचक है, जो स्व पर का वध करता है और कहता है कि मैं भावों से अहिंसक हूँ। ऐसा पुरुष तो जिनमत के बाह्य है।।42।।

- **जो हिंसग-उवयरणाणं उवओगं करेदि, सो जदिवि सयं वहं करेदु वा ण करेदु, णं सो हिंसगो एव॥43॥**

  जो व्यक्ति हिंसक उपकरणों का उपयोग करता है, चाहे वह स्वयं जीव वध करे या न करे, परन्तु वह हिंसक ही है।।43।।

- **जीवो मरेदु वा ण मरेदु, णं जदि तुमं मारण-भावा करेसि दु तुमं हिंसगो एव तहा णूणं कम्मबंधं पि भजेहिसि॥44॥**

  जीव मरे अथवा न मरे, परन्तु आपने मारने के परिणाम यदि कर लिए हैं, तो आप हिंसक ही हैं; कर्मों के बंध को प्राप्त किए बिना नहीं रह सकते।।44।।

- **जो जीवाणं पीडण-वहस्स य मणे करेदि संकप्पं पि, सो हिंसणं लहेदि तहा कम्मबंधं किच्चा होदि दुग्गदि-पत्तो॥45॥**

  जो व्यक्ति जीवों को सताने और वध करने का मन में संकल्प भी करता है, वह हिंसा को प्राप्त होता है तथा कर्मबंध करके दुर्गति का पात्र बनता है।।45।।

- **जदा जीवो उण्हलोहपिंडं सग-हत्थेहिं अवरं मारणं इच्छेदि, तदा सो मरेदु वा ण मरेदु, णं हिंसगस्स हत्था दु जलिज्जा। एवंविह मारणस्स संकप्पमेत्तादो जीवो पावबंधं भजेदि॥46॥**

  जब व्यक्ति गर्म लोह-पिण्ड को अपने हाथ में उठाकर दूसरे को मारना चाहता है तब वह मरे या न मरे किन्तु मारने वाले के हाथ तो जल ही जाएंगे। ठीक इसी तरह, मारने के संकल्प मात्र से पाप-बंध को प्राप्त हो जाता है।।46।।

- **सयलधम्म-जणगो अहिंसा-धम्मो त्ति॥47॥**

  सर्व धर्मों का जनक अहिंसा-धर्म है।।47।।

- **कंचिदवि जीवं तुमं मारण-अहिगारो णत्थि, जदिवि सो मणुवो वा पसू होदु॥48॥**

  किसी को मारने का अधिकार आपको नहीं है, चाहे वह मनुष्य हो या पशु।।48।।

- **जदि तुमं कस्सचिद उवयारं ण करेसि, दु कस्सचिद अवयारस्स अहिगारो वि णत्थि॥49॥**

  यदि आप किसी का उपकार नहीं कर सकते, तो किसी का अपकार करने का भी अधिकार नहीं है।।49।।

- **हे जीव! तुमं इदर-पाण-हरणं सिक्खेसि। तुमं तदा होज्जा वरो, जदा तुमं अवरं पाण-दाणं सिक्खेहिसि॥50॥**

  हे जीव! तूने दूसरे के प्राणों का हरण करना सीखा है। तब तुझे जानें जब तू दूसरे को प्राण-दान करना सीख जाये।।50।।

- **हिंसगो वरो णत्थि, रक्खगो होदि वरो॥51॥**

  मारने वाला श्रेष्ठ नहीं, बचाने वाला श्रेष्ठ होता है।।51।।

- **वीसबंधुत्तस्स एगो हि णादो, अहिंसाधम्मो त्थि मज्झाणं॥52॥**

  विश्वबन्धुत्व का एक ही नारा-अहिंसा धर्म है हमारा।।52।।

- **विहा वणप्फदि-हणणं णवि कादव्वं, णवरि सो वि तुज्झ इव संवेदणसीलो जीवो त्थि॥53॥**

  व्यर्थ में वनस्पति का ही हनन नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह भी आप जैसा ही संवेदनशील जीव है।।53।।

- **जदि सुहिद-जीवणं रुच्चेसि दु कंचिदवि मा देहि कट्ठं॥54॥**

  यदि सुखी जीवन जीना पसंद करते हो तो किसी को कष्ट में नहीं डालो।।54।।

- **जो अवर-कट्ठं सगीय-कट्ठं मण्णेदि, सो पुरिसो हि साहु-पुरिसो॥55॥**

  वही पुरुष साधु है, जो दूसरे के कष्ट को अपना कष्ट मानता है।।55।।

- **पत्तेग-जीवो सगीय-दुहे दुही होदि, णं सज्जणा परदुहे होंति दुही॥56॥**
  प्रत्येक प्राणी अपने दुःख में दुःखी हो लेता है, किन्तु सज्जन पर-दुःख में दुःखी होते हैं।।56।।

- **कोडि-रयणाणं दाणं णो वरं, णं एगजीवस्स पाण-रक्खणं वरं॥57॥**
  करोड़ों रत्नों का दान श्रेष्ठ नहीं, पर एक जीव के प्राण की रक्षा करना श्रेष्ठ है।।57।।

- **एग-पक्खे तिलोयदाणं तहा इदर-पक्खे एगजीवस्स अभयदाणं; दोसुं वरं अभयदाणं॥58॥**
  एक ओर तीन लोक का दान और दूसरी ओर एक जीव को अभयदान; दोनों में श्रेष्ठ कोई है तो वह है अभयदान।।58।।

- **इदरस्स संताणं सगीय-संताणमिव पस्सेज्जा॥59॥**
  दूसरे की संतान को अपनी संतान के समान देखना चाहिए।।59।।

- **तिरिया वि जीवा, तेसिं संतदी अत्थि। ते फलपुप्फ-सुक्खफलाणि णत्थि। इमे मा भुंजेहि॥60॥**
  तिर्यंच भी जीव हैं, उनकी संतति है। वे मेवा, फल, फूल नहीं हैं। इन्हें मत खाओ।।60।।

- **एगो जीवो हिंसणं करेदि, णं ताए फलं भुंजगा अणेगा होंति। जहा– परिवार-पहाणो धणं अज्जेदि तहा सव्वे फलं भुंजेंति॥61॥**
  हिंसा एक जीव करता है, पर उसके फल भोगने वाले अनेक होते हैं, जैसे— परिवार का मुखिया धन कमाता है और सभी फल भोगते हैं।।61।।

- **अणेग-जीवा हिंसणं करेंतु, णं फलं एगो भुंजेदि। जहा- राया सेणं देदि आएसं, सेणा हिंसणं करेदि, फलं राया भुंजेदि॥62॥**

  अनेक व्यक्ति हिंसा करें परन्तु फल एक भोगता है, जैसे— राजा सेना को आदेश देता है, सेना हिंसा करती है, फल राजा को भोगना पड़ता है।।62।।

- **जीवघादेण पावकम्म-अज्जणं होदि। णरगादिग-गदि-जीवा तस्स फलसरूव-दुहाणि भुंजंति, जाणि वयण-अगोयराणि॥63॥**

  जीवों के घात करने से पाप कर्म का उपार्जन होता है। नरकादिक गति के जीव उसके फलस्वरूप जो दुःख भोगते हैं, वह वचन के अगोचर है।।63।।

- **धम्मरूव-रुक्खो जो बहुकालेण उत्तम-खमादि-परमोदार-संजमेहिं पल्लविदो य; सो हिंसारूव-कुढारेण खणमेत्ते णस्सेदि॥64॥**

  जो धर्म-रूप-वृक्ष उत्तम-क्षमादि परम-उदार संयमों से बहुत काल से बढ़ाया है; वह हिंसा रूप कुठार से क्षण मात्र में नष्ट हो जाता है।।64।।

- **जे सगीय-सत्ति-देवपूया-जण्ण-अत्थेणं च जीवघादं करेंति, सो घादो ता झत्ति हु णरगे पाडेदि॥65॥**

  अपनी शक्ति के अथवा देवपूजा के तथा यज्ञ के अर्थ जो मनुष्य जीवघात करते हैं, वह घात उन्हें शीघ्र ही नरक में डालता है।।65।।

- **जो अण्णो मूढो धम्मबुद्धीए जीवा मारेदि, सो पासाण-सिलाए चिट्ठिदूणं समुद्द-तारणाकंखं करेदि॥66॥**

  जो अज्ञ धर्म-बुद्धि से जीवों को मारता है, वह पाषाण की शिला पर बैठकर समुद्र पार करने की इच्छा करता है।।66।।

- **हिंसगस्स णिप्पुहत्त-महत्त-आसारहिदत्त-दुक्करतव-दाणादि-सयल-कज्जाणि णिरत्थगाणि॥67॥**

  हिंसक पुरुष की निस्पृहता, महत्ता, आशा रहितता, दुष्कर तप करना और दान करना आदि समस्त कार्य व्यर्थ हैं।।67।।

- **धम्मप्पं बहुघादग-वावारं ण कादव्वं॥68॥**

  धर्मात्मा जीव को बहुघातकव्यापार नहीं करना चाहिए।।68।।

- **जम्हि बहुजीवहिंसा होदि तहा फलं तुच्छं हि होदि, तस्स दव्वस्स सेवणं अणुचिदं॥69॥**

  उस द्रव्य का सेवन करना उचित नहीं है, जिसमें जीव-हिंसा बहुत होती हो तथा फल तुच्छ प्राप्त हो।।69।।

- **जे धम्मबुद्धीए-जीवघादरूव-पावं करेंति, ते सगीय-जीवण-इच्छाए हालाहल-विसं पिबेंति॥70॥**

  धर्म की बुद्धि से जीवघात-रूप पाप जो करते हैं, वे अपने जीवन की इच्छा से हालाहल विष को पीते हैं।।70।।

- **जं जीवसमूह-रक्खणत्थं अत्थि; तमेव भावसुद्धीदो दिढव्वदं, तमेव जिणमदस्स सव्वस्सं य तमेव सिद्धंत-रहस्सं॥71॥**

  वही तो जिनमत का सर्वस्व है और वही सिद्धांत का रहस्य है, जो जीवों के समूह की रक्षा के लिए है एवं वही भाव शुद्धिपूवर्पक दृढ़ व्रत है।।71।।

- **माणवा जीवणं इयत्तं पियं, जदि मरणत्थं कोवि सयल-पुढवी-रज्जं देदि, पुणो वि मरणं ण इच्छेदि। तेण एग-जीव-रक्खणे जं पुण्णं होदि, तं सयल-पुढवी-दाणदो वि अहिगं अत्थि॥72॥**

  मनुष्यों को जीवन इतना प्यारा है कि मरने के लिए यदि कोई समस्त पृथ्वी का राज्य देना चाहे तो भी मरना नहीं चाहते। इस कारण एक जीव को बचाने में जो पुण्य होता है वह समस्त पृथ्वी के दान से भी अधिक है।।72।।

- **सुतंतदाए अत्थो सच्छंददा णत्थि। जावं देसस्स विज्जालए अहिंसा-सिद्धंतं पढण-पढाण-विवत्था ण होहिदि, तावं देसे णिरंतर-वड्ढमाणं-हिंसणं ण रुंभेहिदि॥73॥**

  स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छन्दता नहीं है। जब तक इस देश के स्कूल/कॉलेज में अहिंसा सिद्धांत को सिखाने-पढ़ाने की व्यवस्था नहीं की जाएगी, तब तक देश में निरन्तर बढ़ती हिंसा को रोका नहीं जा सकेगा।।73।।

- **पवित्तमणो पवित्तचिंतणं पवित्त-आयारो य भारदीय-सक्किदीए मूलाधारो॥74॥**

  भारतीय संस्कृति का मूलाधार पवित्र मन, पवित्र विचार, पवित्र आचार है।।74।।

- **चित्त-णिम्मलदाए चारित्तं पि होदि णिम्मलं॥75॥**

  चित्त को निर्मल करने से चारित्र भी निर्मल बनता है।।75।।

- **मज्झाणं हिदयो धम्मत्थलो होहिदि दु सव्वस्स कल्लाणजणगो होहिदि॥76॥**

  हृदय हमारा धर्मस्थल होगा तो सभी के लिए कल्याणजनक होगा।।76।।

- **अहिंसा-तित्थ-वंदणं विणा सयल-तित्थ-वंदणा विहा। जस्स हिदयंगमो पाणीरक्खा-परोवयारो य, तस्स हिदयो हि तित्थो।।77।।**

  अहिंसा-तीर्थ-वंदना किए बिना सभी तीर्थ-वंदना व्यर्थ है। प्राणी-रक्षा, परोपकार जिसके हृदयंगम है, उसका हृदय ही तीर्थ है।।77।।

- **वीस-बंधुत्त-जणणी अहिंसा।।78।।**

  अहिंसा विश्वबन्धुत्व की जननी है।।78।।

- **अहिंसाधम्मो समणसक्किदि-पाणा।।79।।**

  श्रमण संस्कृति का प्राण है, अहिंसा-धर्म।।79।।

- **अहिंसावद-अंकं विणा सेसवदाणि सुण्णाणि। अंकाभावे सुण्णो होदि सुण्णो।।80।।**

  अहिंसा-व्रतरूपी अंक के बिना शेष व्रत शून्य हैं। अंक के अभाव में शून्य, शून्य ही रह जाता है।।80।।

- **वीसमेत्ती अहिंसाए होहिदि, अण्णो कोवि उवायो णत्थि।।81।।**

  विश्वमैत्री अहिंसा से होगी, अन्य कोई उपाय नहीं है।।81।।

- **पडिऊल-आयरणं हिंसाए सेणीए गेण्हेदि।।82।।**

  प्रतिकूल आचरण हिंसा की कोटि में आता है।।82।।

- **केणचिद सत्तीए अहिग-कज्ज-गहणं पि अहिंसगस्स अणुचिदं॥83॥**

  किसी से शक्ति से ज्यादा काम लेना भी अहिंसक के लिए उचित नहीं है।।83।।

- **सगीय-अहीणत्थ-भिच्च-पसु-आदीणं अण्णपाण-णिरोहणं तहा समए भोयणादि-णिसेहणं पि हिंसा एव॥84॥**

अपने अधीनस्थ भृत्य और पशु आदि के अन्नपान का निरोध करना और समय पर भोजन-पानी नहीं देना भी हिंसा है।।84।।

- **मम्मभेदी-सद्द-उवओगो हिंसा-सेणीए अत्थि॥85॥**

  मर्मभेदी शब्दों का प्रयोगकरना हिंसा की श्रेणी में है।।85।।

- **सो झत्ति दुहमुत्तो होहिदि, इमेण उद्देस्सेण पाणिं ण मारेज्जा। दुहं कम्मोदय-जणिदं, तं भुंजिज्जदे एव; एत्थ ण दु इदर-भवे॥86॥**

  प्राणी को इस उद्देश्य से नहीं मरना कि वह शीघ्र दुःखों से मुक्त हो जाएगा। दुःख कर्मोदय-जनित है, उसे भोगना ही पड़ेगा, यहाँ नहीं तो अगले भव में।।86।।

- **दुहिद-पाणीणं कट्ठोवयारं तु कादव्वं, णं झत्ति दुहमुत्ति-भावणाए ता ण मारेज्जा, तं पि हिंसाकम्मं॥87॥**

  दुखित प्राणियों के कष्ट का उपचार तो करना चाहिए, परन्तु शीघ्र दुःख मुक्ति की भावना से उन्हें मारना नहीं चाहिए, वह भी हिंसा-कर्म ही है।।87।।

- **किंचण अप्पण्हूणं विवरीदं चिंतणं होदि। ते चिंतंति- संसारे सुहं दुल्लहं। इमं जीवं सुहिद-दसाए हि हिंसेदु जेण सो सदा होहिदि सुहिदो। इदं पुण्ण-मूढत्तजुदं चिंतणं। जीवाणं सुहं दुहं च सुहासुहकम्मभावेहिं पप्पेदि। जहा करेहिदि कम्मं, फलं पि तहेव लहेहिदि। सम्मचिंतणं होदव्वं। विवरीद-धारणाए कस्सचिद जीवस्स वहं ण कुणेदु।।88।।**

  कुछ अल्पज्ञ जीवों का विचार उल्टा चला करता है। वे सोचते हैं कि—संसार में सुख दुर्लभ है। इस जीव को सुखी अवस्था में ही मार दो जिससे वह सुखी ही बना रहेगा। यह विचार पूर्ण-मूढ़ता से युक्त है। सुख-दुःख जीवों को शुभाशुभ भावों से या कर्मों से प्राप्त होता है। जैसा कर्म करेगा, वैसा फल प्राप्त करेगा। सम्यक् चिंतवन होना चाहिए। विपरीत धारणा में आकर किसी जीव का वध न करें।।88।।

- **अहिंसाधम्म-पालणं एगविह-रसायणं। जो इदं भुंजेदि, सो अयरामर-पदं भजेदि।।89।।**

  अहिंसा धर्म का पालन एक प्रकार का रसायन है। जो जीव इस रसायन का सेवन करता है, वह अजर-अमर पद को प्राप्त कर लेता है।।89।।

- **अहिंसा हि परमो धम्मो, अण्णो कोवि धम्मो णत्थि। अदो, धम्मत्थं पि णो कुज्जा जीवहिंसणं।।90।।**

  अहिंसा ही परम धर्म है, अन्य कोई धर्म नहीं। अतः, धर्मार्थ भी जीव हिंसा नहीं करना चाहिए।।90।।

- **पुज्ज-देव-णिमित्तेण वि कस्सचिद जीवस्स वहं ण कादव्वं। अयं परमो धम्मो त्थि।।91।।**

  पूज्य के निमित्त तथा देवता के निमित्त भी किसी जीव का वध नहीं करना चाहिए। यह परम धर्म है।।91।।

- **हिंसग-जीवं पस्सिदूणं इदं मा चिंतेहि– इमं हिंसेज्जा। हिंसगजीवाणं हिंसित्ता अहिंसा-रक्खणं ण कीरदे। हिंसगस्स वहो वि हिंसा एव।।92।।**

  किसी हिंसक प्राणी को देखकर यह विचार न करें कि—इसे मार दिया जाये। हिंसक जीवों को घात कर अहिंसा की रक्षा नहीं की जा सकती। हिंसक का भी वध करना हिंसा ही है।।92।।

- **जम्हि णो दया, एरिसेहिं सत्थ-आयरणेहिं किं लाहो? णवरि एरिसाणं सत्थ-आयरणाणं गहण-मेत्तेण हि जीवो दुग्गदिं गच्छेदि।।93।।**

  जिसमें दया नहीं है, ऐसे शास्त्र तथा आचरण से क्या लाभ? क्योंकि ऐसे शास्त्र और आचरण के अंगीकार मात्र से ही जीव दुर्गति को चला जाता है।।93।।

- **सव्व-जीवेसुं दया-कारगो एगक्खरो वरो तहा गेज्झो त्थि, णं विसय-कसायजुद-पुरिसाणं रइदं इंदियपोसगं पावरूवं कुसत्थं वरं णत्थि।।94।।**

  सभी प्राणियों पर दया करने वाला तो एक अक्षर श्रेष्ठ है और ग्रहण करने योग्य है, परन्तु विषय-कषायी पुरुषों का रचा हुआ इन्द्रियों को पोषने वाला जो पाप रूप कुशास्त्र है, वह श्रेष्ठ नहीं है।।94।।

- **सयल-सत्थ-मदाणं एगो हि सारो–''अहिंसा लक्खणो धम्मो''।।95।।**

  समस्त शास्त्रों और सभी मतों का एक ही सार—''**अहिंसा लक्षणो धर्मः**'' है।।95।।

- **अहिंसा लोयं रुच्चेदि। अहिंसा हि आणंदसंतदी, अहिंसा उत्तमगदी तहा सक्खं लच्छी।।96।।**

  अहिंसा जगत् को भाती है। अहिंसा ही आनन्द की सन्तति है, अहिंसा ही उत्तम गति और साक्षात् लक्ष्मी है।।96।।

- **लोगस्स सयल-उत्तमोत्तम-गुणा अहिंसा-धम्मेहिमेव संति॥97॥**

  जगत् में जितने श्रेष्ठ/उत्तमोत्तम गुण हैं, वे सब अहिंसा-धर्म से ही हैं।।97।।

- **अहिंसा मुत्तिं सग्गलच्छिं चेव देदि। अहिंसा आदहिदं करेदि तहा कट्ठरूव-आवदाओ णस्सेदि॥98॥**

  अहिंसा ही मुक्ति प्रदान करती है तथा स्वर्ग-लक्ष्मी देती है। अहिंसा ही आत्माका हित करती है तथा कष्ट रूप आपदाओं को नष्ट करती है।।98।।

- **इह लोए परमाणूदो लहू कोवि णत्थि, आयासदो गुरू कोवि णत्थि; एवं अहिंसादो गुरू कोवि धम्मो णत्थि॥99॥**

  इस लोक में परमाणु से छोटा कोई नहीं है, आकाश से बड़ा कोई नहीं है; इसी प्रकार अहिंसा से बड़ा कोई धर्म नहीं है।।99।।

- **तव-सुद-जम-झाण-दाण-सच्च-सीलव्वदादिग-उत्तमकज्जाणं च जणणी अहिंसा एव॥100॥**

  तप, श्रुत, यम, ध्यान, दान, सत्य तथा शील व्रतादिक जितने उत्तम कार्य हैं, सबकी जननी एक अहिंसा ही है।।100।।

- **जस्स मणो करुणा-अद्दो विसिट्ठ-णाणजुदो तहा इंदियविसय-विमुत्तो वा होदु, तमेव होदि मणोवंछिद-कज्ज-सिद्धी॥101॥**

  जिस पुरुष का मन करुणा से आर्द्र हो तथा विशिष्ट ज्ञान सहित हो और इन्द्रियों के विषयों से दूर हो, उसी को मनोवांछित कार्य की सिद्धि होती है।।101।।

- **जस्स चित्तं सत्थमिव णिद्दयं, तस्स तवयरणं सत्थपढणं इच्चादिकज्जाइं मेत्तं कट्ठत्थं होंति॥102॥**

  जिस पुरुष का चित्त शस्त्र के तुल्य निर्दय है, उसका तप करना और शास्त्र पढ़ना आदि कार्य केवल कष्ट के लिए ही होते हैं।।102।।

- **जीवघादगस्स तव्विसयग-अणुमोदगस्स य पावं परमागमे सरिसं हि भणिदं॥103॥**

  जीवघात करने वाला, तद्विषयक अनुमोदना (प्रशंसा) करने वाला, इन दोनों का पाप परमागम में समान ही निर्णय किया गया है।।103।।

- **अहिंसा हि जीवाणं सुह-कल्लाण-अब्भुदया य देदि। सा तव-सज्झाय-णियम-यमादिं पि देदि॥104॥**

  अहिंसा ही जीवों को सुख, कल्याण और अभ्युदय देती है। वह तप, स्वाध्याय और नियम, यमादि भी देती है।।104।।

- **धम्मस्स सयलंगेसुं अहिंसा एग-पहाणंगं॥105॥**

  धर्म के समस्त अंगों में अहिंसा एक प्रधान अंग है।।105।।

- **अहिंसा सदुवएस-दाणत्थं सरस्सदी अत्थि॥106॥**

  अहिंसा सदुपदेश देने के लिए सरस्वती है।।106।।

- **जेण महापुरिसेण जीवा पीदिपुव्वगं अभयदाणं दिंतिदं, तेण किंणु हु तवं ण किदं तहा किंणु हु दाणं ण दिंतिदं? अभयदाणे सव्वदाणाइं समाविट्ठाइं॥107॥**

  जिस महापुरुष ने जीवों को प्रीतिपूर्वक अभयदान दिया, उस महात्मा ने कौन-सा तप नहीं किया और कौन-सा दान नहीं दिया? अर्थात् अभयदान में सर्वदान समाविष्ट हैं।।107।।

- **पुरिस-हिदयो जह जह करुणादि-भावे थिरेदि, तह तह विवेग-लच्छी तेण परमपीदिं पयडेदि।।108।।**

  पुरुषों का हृदय जैसे-जैसे करुणा आदि में स्थिरता को प्राप्त करता है, वैसे-वैसे विवेक रूपी लक्ष्मी उससे परम प्रीति प्रकट करती है।।108।।

- **हे भविय! जहा जोदिसे पहाणसामी चंदो त्थि, सग्गदेवेसुं इंदो, गेहेसुं आदिच्चो, रुक्खेसुं कप्पतरू, जलासएसुं सायरो, पव्वएसुं मेरूपव्वदो, देवेसुं वीदरागदेवो पहाणो; एवं सीलव्वदेसुं अहिंसा पहाणा अत्थि।।109।।**

  हे भव्य जीव! जिस प्रकार ज्योतिष में प्रधान स्वामी चन्द्रमा है, स्वर्ग के देवों में इन्द्र, ग्रहों में सूर्य, वृक्षों में कल्पवृक्ष, जलाशयों में समुद्र, पर्वत में मेरू पर्वत, देवों में वीतराग देव प्रधान हैं, ठीक इसी प्रकार शील व्रतों में अहिंसा प्रधान है।।109।।

- **अहिंसाधम्मो रुक्खछाया। जो तवणे तवेदि, सो हि छाया-आसयं गेण्हेदि। जदिवि सिंहो होदु वा धेणू, छाया सव्वं देदि ठाणं। तहा धम्मो पाणी-मेत्तं ठाणं देदि। धम्मे कोवि भेदभावो ण होदि।।110।।**

  अहिंसा-धर्म वृक्ष की छाया है। जो तपन में तपा है, वही छाया का आश्रय लेना चाहता है। सिंह हो या गाय, छाया सभी को स्थान देती है। इसी प्रकार धर्म प्राणी-मात्र को स्थान प्रदान करता है। कोई भेद भाव धर्म में नहीं होता।।110।।

- **हेम-णिम्मिद-आभूसणाणं आयार भेदा होंति, णं सयल-आभूसणेसुं णिहिदं सुवण्णं सरिसं। तहेव गदि-आयारादीसुं भेदा होंतु, णं जीवेसुं णाण-दंसणं चेयण्णं च सरिसं। पत्तेग-जीवम्हि सगीय-सरिसा संवेदणा जाणेहि। कंचिदवि जीवं मा देहि कट्ठं।।111।।**

  स्वर्ण निर्मित महलों के आकार में भेद हो सकते हैं, परन्तु सम्पूर्ण गहनों में निहित स्वर्ण समान हैं उसी प्रकार गति, आकार आदि में भेद भले ही हों, पर प्राणियों

में ज्ञान दर्शन चैतन्य समान है। प्रत्येक प्राणी के अंदर अपनी जैसी संवेदना समझें। किसी भी जीव को कष्ट न दें।।111।।

- **रिवुं पि रिवु-दिट्ठीए मा पस्स। तस्स अहिदे मा कुण चिंतणं। सो सगीय-दुक्कम्मेहिं सयमेव मरिस्सदि, तुमं विहा हिंसग-भावा किमु कुणसि?॥112॥**

शत्रु को भी शत्रु-दृष्टि से मत देखो। उसके अहित में चिन्तवन मत ले जाओ। वह तो अपने दुष्कर्मों से स्वयं मर जाएगा, आप व्यर्थ में हिंसक-भाव क्यों लाते हो?।।112।।

- **अहिंसाधम्मो कस्सिंचिदवि तित्थे पव्वदे वणे णत्थि, सो दु णियप्पम्हि उप्पज्जमाणो अंकुरो त्थि॥113॥**

अहिंसा-धर्म किसी तीर्थ/पर्वत/जंगल में नहीं, वह तो निज आत्मा के अंदर उत्पन्न होने वाला अंकुर है।।113।।

- **जो सव्वस्स कल्लाणकारी होदु, सो हि धम्मो। जो कंचिदवि जीवं कट्ठं ण देदि, सो धम्मो अहिंसा मेत्तं॥114॥**

धर्म वही है जो सबके लिए कल्याणकारी हो। जो किसी भी जीव को कष्ट प्रदान नहीं करता है, वह धर्म है एकमात्र अहिंसा।।114।।

- **संसार-पंके लित्तप्पं अहिंसाधम्मो हि रक्खदे॥115॥**

संसार में पंक में फंसी आत्मा को एक अहिंसा धर्म ही निजात दिला सकता है।।115।।

- **जावं माणव-चित्ते धम्मो वसेदि, तावं सो हिंसगा वि ण मारेदि। णं जदा धम्मो तस्स चित्तादो णिक्कासेदि तदा किं अण्ण-वयणं; पियपुत्तं पिदू मारेदि तहा पिदुं पुत्तो मारेदि। अदो संसारं सुविवत्थिदकारगो धम्मो अहिंसा एव॥116॥**

  जब तक मनुष्य के मन में धर्म रहता है, तब तक वह मारने वालों को भी नहीं मारता। किन्तु देखो, जब धर्म उसके अंतःकरण से निकल जाता है तब औरों की कौन कहे, प्रिय पुत्र को पिता मार डालता है और पिता को पुत्र डालता है। अतः संसार को सुव्यवस्थित रखने वाला धर्म है तो वह अहिंसा है।।116।।

- **वत्थुसहावो धम्मो। दसविह-खमादिभावा धम्मो। रयणत्तयं धम्मो। जीवाणं रक्खणं पि धम्मो त्ति॥117॥**

  वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं। दस प्रकार के क्षमा आदि भावों को धर्म कहते हैं। रत्नत्रय को धर्म कहते हैं और जीवों की रक्षा को भी धर्म कहा गया है।।117।।

- **बभुक्खिद-जीवं पस्सिदूणं सग-देहस्स मंसं देदूणं सगहिंसणं पि ण कादव्वं॥118॥**

  किसी भी भूखे जीव को देखकर अपने शरीर का माँस देकर अपनी भी हिंसा नहीं करना चाहिए।।118।।

---

[2]
सच्चं
(सत्य)

- **जो सच्च-संजम-तव-धम्मे सदा तल्लीणो, तं देवा वि णमस्संति॥1॥**
  जो व्यक्ति सत्य, संयम-धर्म, तप-धर्म में सदा तल्लीन रहता है; उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।।1।।

- **सच्चं जीवणसारो, सच्चं विणा जीवणं मिदमिव। जस्स चित्तं सच्चसुण्णं सो माणवधम्मसुण्णो॥2॥**
  सत्य जीवन का सार है, सत्य के बिना जीवन मृत तुल्य है। जिसका अंतःकरण सत्य से शून्य है वह मानवधर्म से रहित है।।2।।

- **पणो पाणदो अहिग-पियो होदि॥3॥**
  प्रण प्राण से अधिक प्रिय होता है।।3।।

- **पाण-विओगो मेत्तं वट्टमाण-देहस्स कट्ठदायगो होदि, णं पणविओगो भवे भवे अच्चंत-दुहदायगो होदि॥4॥**
  प्राणों का वियोग मात्र वर्तमान देह के लिए कष्टदायक होता है, परन्तु प्रण का वियोग भव-भव में अत्यंत दुःखदायी होता है।।4।।

- **कदावि सच्चाभावं ण कीरदे॥5॥**

  सत्य का कभी अभाव नहीं किया जा सकता।।5।।

- **सच्चं पडिपलं दिप्पेदि॥6॥**

  सत्य प्रतिपल चमकता है।।6।।

- **सच्चं चंदेहिं पि अदि-णिम्मलं होदि॥7॥**

  सत्य चाँद से भी निर्मल होता है।।7।।

- **असच्चं किण्ह-रयणी सरिसं॥8॥**

  असत्य अंधेरी रजनी के समान है।।8।।

- **सच्चवादी कट्ठं लहित्ता वि सुहमय-जीवणं जीवेदि॥9॥**

  सत्यवादी कष्ट को प्राप्त होकर भी सुखमय जीवन जीता है।।9।।

- **सच्चवादी-जसो जुगजुग-पज्जंतं गुंजेदि, असच्चवादी अवजसे रोच्छेदि॥10॥**

  सत्यवादी का यश युगों-युगों तक गूँजता है, जबकि असत्यवादी अपयश में रोता है।।10।।

- **सच्चवदं पि दुविहं, अणुव्वदं महव्वदं चेदि॥11॥**

  सत्य व्रत को भी दो भेदों से जाना जाता है—अणुव्रत एवं महाव्रत।।11।।

- **जो थूल-असच्चं ण सयं वदेदि, ण अवरेहिं वादेदि तहा एरिसं सच्चं पि सयं ण वदेदि, ण वादेदि जो अवर-पाणघादस्स होदु; तं थूल-असच्च-चागो सच्चाणुव्वदं च भासंते॥12॥**

  जो स्थूल झूठ को न स्वयं बोलता है, न दूसरों से बुलवाता है तथा ऐसा सत्य भी स्वयं न बोलता है, न बुलवाता है जो दूसरे के प्राणघात के लिए हो; उसे स्थूल झूठ का त्याग अर्थात् सत्याणुव्रत कहते हैं।।12।।

- **रागादिगेण असच्चभासण-चागो, अवर-तावयारी-सच्च-वयणाणं पि चागो तहा सुत्तत्थ-कहणे अजधत्थवयण-चागो य सच्च-महव्वदं॥13॥**

  रागादिक के द्वारा असत्य बोलने का त्याग करना और पर को ताप करने वाले सत्य वचनों के भी कथन का त्याग करना तथा सूत्र और अर्थ के कहने में अयथार्थ वचनों का त्याग करना सत्य महाव्रत है।।13।।

- **हस्स-भय-कोह-लोहादो मणवयणकाएहिं सव्वदा मा भासेहि असच्चं, णवरि एसो जीवो असच्चभासी-वीसासघादी य होदि॥14॥**

  हास्य, भय, क्रोध और लोभ से मन, वचन और काय के द्वारा सभी काल में असत्य नहीं बोलें, क्योंकि वैसा करने वाला असत्य-भाषी और विश्वासघाती होता है।।14।।

- **जं वयणं जीवाणं हिदकारगं, तं असच्चे सदि वि सच्चं तहा जं वयणं पावसहिद-हिंसारूवकज्जं पुट्ठेदि, तं सच्चमवि असच्चं णिंदणिज्जं चेव॥15॥**

  जो वचन जीवों का हित करने वाला हो, वह असत्य होने पर भी सत्य है और जो वचन पाप-सहित हिंसा-रूप कार्य को पुष्ट करता हो, वह सत्य भी असत्य है और निंदनीय है।।15।।

- **समत्थ-पओयण-सिद्धिकारग-मोणावलंबणं हि हिदकारगं। जदि वयणं भासेज्जा तु तमेव जं सव्वं पियं, सच्चं सव्वजीवहितंकरं च होदु॥16॥**

  समस्त प्रयोजनों को सिद्ध करने वाले मौन का ही आलम्बन करना हितकारी है। यदि वचन कहना ही पड़े तो ऐसा कहें जो सबको प्रिय हो, सत्य और समस्त जीवों का हितकारी हो।।16।।

- **जे पुरिसा इमं लोगं सच्चरूव-सकरुणा-वंचणारहिद-मग्गे णिरंतरं गामीअ, ते जयसीला। ते हि लोए वंदणिज्जा पुज्जणिज्जा वा॥17॥**

  जिन पुरुषों ने इस लोक को सत्य रूप, करुणा सहित, वंचना-रहित मार्ग में निरंतर चलाया, वे जयशाली हैं। वे ही जगत में वंदनीय और पूज्यनीय हैं।।17।।

- **दुट्ठ-पुरिसाणं मुह-बंबीए वित्थिण्ण-विसवंता जा सच्चवाणी-रूवी-सप्पिणी णिवसेदि, सा सव्व-लोयं दुहं देदि॥18॥**

  दुष्ट पुरुषों की मुख रूपी बाँमी में विस्तीर्ण विषवाली जो असत्य वाणी रूपी सर्पिणी रहती है, वह जगत् भर को दुःख देती है।।18।।

- **अणेयंत-सियवाद-वाणी हु सच्चत्था॥19॥**

  अनेकान्त, स्याद्वाद वाणी ही सत्यार्थ है।।19।।

- **जाणि वयणाणि संदेहरूवाणि पावरूव-दोसजुदाणि ईसा-उप्पादगाणि वा होंतु, ताणि अवरस्स पुच्छणे वि ण दु भासेज्जा णेव सुणेज्जा॥20॥**

  जो वचन संदेह रूप हों तथा पाप रूप दोषों से युक्त हों और ईर्ष्या को उत्पन्न करने वाले हों, वे अन्य के पूँछने पर भी बोलना और सुनना नहीं चाहिए।।20।।

- **मम्मछेदगं, मणे सल्ल-उप्पादगं, अथिर-चंचलरूवं, विरोह-उप्पादगं णिद्दयं च वयणं कंठगद-पाणे सदि वि णो भासेज्जा॥21॥**

  मर्म को छेदने वाला, मन में शल्य उपजाने वाला, स्थिरता रहित चंचल रूप, विरोध उपजाने वाला तथा दया रहित वचन कंठगत प्राण होने पर भी नहीं बोलना चाहिए।।21।।

- **करुणामय-वयणाणि सुणित्ता दुहिदजीवा वि सुही होंति॥22॥**

  करुणामय वचनों को सुनकर दुःखी भी सुखी हो जाते हैं।।22।।

- **लोए ते पुरिसा धण्णा, जेसिं हिदए सच्चधम्म-पडागा दोलेदि॥23॥**

  जगत् में वे पुरुष धन्य हैं, जिनके हृदय में सत्यधर्म की पताका लहराती है।।23।।

- **सच्चपहावेण अग्गी वि होदि सीयलं णीरं, सूली वि होदि सिंहासणं च॥24॥**

  सत्य के प्रभाव से अग्नि भी शीतल जल हो जाती है, शूली भी सिंहासन हो जाता है।।24।।

- **असच्चभासा पासाण-तरणीव अत्थि। सगं तु भवसायरे मज्जेहिदि, तदासयी-जीवा वि मज्जेहिंति॥25॥**

  असत्य भाषा पत्थर की नौका के समान है। स्वयं तो भवसागर में डूबेगी, उस पर आश्रय लेने वाले भी डूबेंगे।।25।।

- **जत्थ धम्मणासो, किरिया-धंसो, समीचीण-सिद्धंतलोवो वा होदु, तत्थ समीचीण-धम्मकिरिया-सिद्धंत-पगासणत्थं पुच्छणं विणा वि णाणीजणा भासेज्जा, णवरि इदं सप्पुरिस-कज्जं॥26॥**

  जहाँ धर्म का नाश हो, क्रिया बिगड़ती हो तथा समीचीन सिद्धांत का लोप होता हो; उस जगह समीचीन धर्म-क्रिया और सिद्धांत-प्रकाशनार्थ बिना पूछे भी विद्वानों को बोलना चाहिए; क्योंकि यह सत्-पुरुषों का कार्य है।।26।।

- **जे महापुरिसा सच्चवयण-भासगाणं जधत्थसरूवं जाणंति तहा सच्च-सीलादिगस्स अवलंबी, तेसिं चरण-फासमेत्तेण, इमा वसुंधरा होदि पवित्ता॥27॥**

  जो महापुरुष सत्य-वचन बोलने वाले तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप को जानते हैं और सत्य, शीलादि के अवलंबी हैं, उनके चरणों के स्पर्शमात्र से यह धरातल पवित्र हो जाता है।।27।।

- **जो णिम्मल-मणुवगदिं पाविदूणं पि सच्च-पदिण्णा-रहिदो, सो पुणो संसारकद्दमादो कहं उत्तारेहिदि?॥28॥**

  जो निर्मल मनुष्य-गति को पाकर भी सत्य-प्रतिज्ञा से रहित है, वह प्राणी फिर संसार कर्दम से किस विधि से पार होगा?।।28।।

- **असच्चस्स किण्ह-तारगो अहिग-समयं णवि ठादि, सच्चादियोदए सदि हि विलीयदि॥29॥**

  असत्य का काला तारा अधिक समय नहीं ठहरता, सत्य-सूर्य के उदित होते ही विलीन हो जाता है।।29।।

- **कट्ठ-समए हि सच्चपरिक्खा होदि॥30॥**

  कष्ट/संकटों के समय ही समय की परीक्षा होती है।।30।।

- **अदिकेसर-पुप्फं कंटेसुं हि विसट्टेदि। सच्चं पि विसमदासुं हि जधत्थदाए पलेदि॥31॥**

  गुलाब काँटों में ही खिलता है। सत्य विषमताओं में ही यथार्थता से पलता है।।31।।

- **कढिणा सच्च-परिक्खा। भो चेदण्ण! तुमं परिक्खत्थी। मा बीहेहि, पसण्णदाए सच्च-परिक्खं देहि, तुं णियमेण होहिसि उत्तिण्णो॥32॥**

  सत्य की परीक्षा कठोर होती है। भो चैतन्य! तू परीक्षार्थी है। भयभीत नहीं होना, प्रसन्नता के साथ सत्य की परीक्षा देना, तू उत्तीर्ण नियम से होगा।।32।।

- **पमादजोगादो मूसा-कहणं असच्चं। असच्चं चदुव्विहं।**

  प्रमाद के योग से जो असत्य कथन कहा जाता है, वह असत्य है। असत्य के चार भेद हैं—

  1. सगीय—दव्वक्खेत्त-काल-भावेहिं विज्जमाण-वत्थुं पि जम्हि वयणे णिसिद्धं, तं पढमं असच्चं। जहा— एत्थ देवदत्तो णत्थि, जदिवि देवदत्तणाम-पुरिसो विज्जमाणो त्थि।

  1. अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से विद्यमान वस्तु भी जिस वचन में निषिद्ध की जाती है, वह पहला असत्य है। जैसे यहाँ पर देवदत्त नहीं है, जबकि देवदत्त नाम का व्यक्ति विद्यमान है।

  2. जत्थ जं वत्थुं णत्थि, तत्थ तस्स सब्भाव-कहणं, तं विदियं असच्चं। जहा— जत्थ घडो णत्थि तहा कस्सचिद पुच्छणे- किं एत्थ घडो त्थि, तदा कहणं 'आमं' अत्थि।

2. जहाँ पर जो वस्तु नहीं है, वहाँ पर उसे बतलाना—यह असत्य का दूसरा भेद है। जैसे—जिस प्रदेश पर घड़ा नहीं रखा है और किसी के यह पूछने पर कि क्या इस जगह घड़ा रखा है, तब कहना कि 'हाँ' रखा है। यह दूसरे प्रकार का असत्य है।

3. जम्हि वयणं सगीय-सरूवदो वत्थुं उवट्ठिदं, पुणरवि परसरूवदो भासदे, तं तिदियं असच्चं। जहा– धेणुं अस्सो भासणं।

3. जिस वचन में अपने स्वरूप से वस्तु उपस्थित है, तो भी पर-स्वरूप से कहा जाता है—यह असत्य का तीसरा भेद समझना चाहिए। जिस प्रकार **''गौ''** को घोड़ा कह देना।

4. जं वयणं सरूव-णिंदणिज्जं दोससहिदं अप्पियं कढोरं च होदि। तं चदुत्थं असच्चं। इदं सच्चं सामण्णदो तिविहं–

4. जो वचन स्वरूप-निंदनीय दोष-सहित और अप्रिय, कठोर होता है। यह चौथे प्रकार का झूठ सामान्य रीति से तीन प्रकार का माना गया है—

I. पेसुण्णवयणं–परस्स पेसुण्णं, हस्स-वयणं, कक्कस-वयणं इदरत्थं तिरक्कारजुद-कोहपुण्ण-भासणं च पेसुण्ण-वयणं।

पैशून्य वचन—दूसरे की चुगली करना, हास्य वचन बोलना, कर्कश वचन बोलना, दूसरे के लिए तिरस्कार युक्त क्रोध पूर्ण बोलना इसी परिधि में आता है।

II. असमंजसवयणं–अणग्गल-वयणं, जस्स कोवि उवजुत्त-अत्थो ण होदु। तं जिणागम-कहिद-सुत्त-विरुद्धं। ताणि सव्वाणि गरहिदाणि णिंदणिज्जाणि वयणाणि।

असमंजस वचन—कुछ का कुछ अनर्गल वचन, जिनका कोई उपर्युक्त अर्थ नहीं निकलता हो। वह जिनागम कथित सूत्रों के विरुद्ध है। वे सब गर्हित, निंदनीय वचन कहे गए हैं।

III. सावज्जवयणं–छेदण-भेदण-मारण-किसि-वाणिज्ज-चोरियादि-वयणं दोससहिद-वयणं च सावज्जवयणं चत्तणिज्जं वा॥33॥

सावद्य वचन—छेदना, भेदना, मारना, खेती वाणिज्य और चोरी आदि का जो वचन हैं, दोष सहित वचन हैं, ये वचन त्यागने योग्य हैं।।33।।

- **जेहिं वयणेहिं पाणि-वहो होदु, एरिसाण वयणाण पओगो सज्जणा णवि कादव्वा।।34।।**

  जिन वचनों से प्राणियों का वध होता हो ऐसे वचनों का प्रयोग सज्जन पुरुषों को नहीं कहना चाहिए।।34।।

- **जं ण पियं, तं अपियवयणं। आउलत्त-उप्पादग-वयणं अरदियर-वयणं भय-उप्पादग-वयणं भीदियर-वयणं। चित्ते खेद-उप्पादग-वयणं खेदवयणं ति णेयं।।35।।**

  अप्रिय वचन—जो प्रिय न हो, अरतिकर वचन—आकुलता पैदा करने वाले वचन कहलाते हैं। भीतिकर वचन—भय उत्पन्न करने वाले वचन, खेद वचन-चित्त में खेद/पश्चाताप् उत्पन्न करने वाले वचन कहलाते हैं।।35।।

- **सव्वाणि कट्ठदायगाणि वयणाणि अपिय-वयणाणि।।36।।**

  संताप/कष्ट देने वाले वचन हैं, वे सभी अप्रिय वचन हैं।।36।।

- **मुसा-भासणं पि हिंसा। अदो णिरत्थग-असच्चभासण-पओगं ण कुणेहि।।37।।**

  झूठ बोलना भी हिंसा है। अतः व्यर्थ के असत्य भाषण का प्रयोग न करें।।37।।

- **पियवयणेहिं सव्वजीवा तुस्संति। तम्हा भासेदव्वं पिय-हिदु-मिद-वयणं चेव। वयणेसुं किं दारिद्दं।।38।।**

  प्रिय वचनों से सभी प्राणी संतुष्ट रहते हें। इसलिए प्रिय, हितकारी, मित वचन बोलना चाहिए। वचनों में क्या दरिद्रता।।38।।

- **वच्छल्लजुद-वाणी वीणादो अहिग-महुरा होदि॥39॥**
  वात्सल्य से भरी वाणी वीणा से भी अधिक मधुर होती है।।39।।

- **मुसावयणं कदावि ण भासेज्जा। परमो धम्मो सच्चं॥40॥**
  मृषा झूठ वचन कभी नहीं बोलना चाहिए। सत्य ही परम धर्म है।।40।।

- **सच्चवयणेहिं होदि पवित्ता वाणी॥41॥**
  सत्य वचनों से वाणी पवित्र होती है।।41।।

- **जो पडिपलं भासेदि सच्चवयणं, तस्स होदि वयण-सिद्धी॥42॥**
  जो व्यक्ति प्रतिपल सत्य वचन बोलता है, उसको वचन-सिद्धि हो जाती है।।42।।

- **पर-पीडाकारग-वयणाइं कदावि ण भासेहि, णवरि ताइं हिंसाकारणाइं। हिंसा कम्मबंध-हेदू। कम्मबंधादो संसार-परिभमणं होदि। अदो मुमुक्खुं पर-पीडाकारण-वयणचागं कादव्वं॥43॥**
  पर-पीड़ाकारक वचन कभी नहीं बोलना, क्योंकि वे हिंसा के कारण हैं। हिंसा कर्मबंध का हेतु है। कर्मबंध से संसार भ्रमण होता है। अतः मुमुक्षु जीव को पर-पीड़ाकारक वचनों का त्याग करना चाहिए।।43।।

- **सप्पुरिसेहिं सह साहुवयणं भासेदव्वं॥44॥**
  सत्पुरुषों के साथ साधु वचन बोलना चाहिए।।44।।

- **सच्चं हि तवो। सच्चं हि संजमो। सच्चम्हि सव्व-गुणा संति॥45॥**
  सत्य ही तप है। सत्य ही संयम है। सर्वगुण सत्य में हैं।।45।।

- **जा सत्थ-संदब्भ-गब्भिदा, तस्स पुरिसस्स वाणी मणोहरा होदि।।46।।**
  उस पुरुष की वाणी मनोहर होती है, जो शास्त्र संदर्भ से गर्भित होती है।।46।।

- **जे उज्जल-मउण-वदं धारेंति, ते हु वरा।।47।।**
  जो व्यक्ति उज्ज्वल मौन व्रत धारण करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं।।47।।

- **णम्मत्तं पियभासणाइं च माणवाभरणाइं।।48।।**
  मनुष्य के दो आभूषण हैं, नम्रता एवं प्रिय भाषण।।48।।

- **जस्स हिदए सच्चं, तस्स हिदए पहुत्तसत्ती विज्जमाणा।।49।।**
  जिसके हृदय में सत्य है, उसके हृदय में प्रभुत्व शक्ति विराजमान रहती है।।49।।

- **सच्चवदिं मिच्छोवएसं ण दिंतेज्जा।।50।।**
  सत्यव्रती को मिथ्या उपदेश नहीं देना चाहिए ।।50।।

- **मोक्खमग्ग-विवरीदवयणं मिच्छोवएसो त्ति रागद्दोसजुदा-वयणं च णेव भासेदव्वं।।51।।**
  जो वचन मोक्षमार्ग के विपरीत है, वह मिथ्या उपदेश है। राग-द्वेष युक्त वाणी नहीं बोलना चाहिए।।51।।

- **कस्सचिदवि गुत्त-रहस्सपुण्ण-वयणं बुद्धिपुव्वगं अवरदो ण भासेज्जा।।52।।**
  किसी भी व्यक्ति की गुप्त रहस्यपूर्ण बात को जानकर दूसरे से नहीं कहना चाहिए।।52।।

- **सच्चवदिं कवडपुव्व-लेहं ण लेहेज्जा॥53॥**
  सत्यव्रती को कपटपूर्ण लेख नहीं लिखना चाहिए।।53।।

- **कस्सचिद धरोहर-हरणं णवि कादव्वं॥54॥**
  किसी व्यक्ति की धरोहर हरण नहीं करना चाहिए।।54।।

- **कुच्छिद-अहिप्पाएण कंचिद गुत्तचरिचं बुद्धिपुव्वगं देहेण अवरं ण संकेदेज्जा॥55॥**
  खोटे अभिप्राय से किसी गुप्त चर्चा को जानकर शरीर के द्वारा दूसरे को संकेत नहीं देना चाहिए।।55।।

- **णिक्कलंक-जीवणत्थं सच्चभासणं हि कुणेहि तहेव सुणेहि॥56॥**
  निष्कलंक जीवन जीना चाहते हो तो सत्य भाषण ही करें और सत्य ही सुनें।।56।।

- **जो सच्चं भासेदि, सच्चरूवं हि गमेदि; सो होदि महाणो॥57॥**
  वह व्यक्ति महान है जो सत्य ही बोलता है तथा सत्य रूप ही चलता है।।57।।

- **जो जेण्ह-सिद्धंत-भासिद-आयरण-पालणे असमत्थे सदि वि सच्चवयणं कहेदि, इमत्तो विवरीदं ण कहेदि, जो ववहारे वि मुसावयणं ण भासेदि; सो हि सच्चवदी॥58॥**
  जैन सिद्धांत के कहे हुए आचार के पालन में असमर्थ होते हुए भी जो सत्यवचन का ही कथन करता है, इससे विपरीत कथन नहीं करता, जो व्यवहार में भी झूठ नहीं बोलता, वही सत्य व्रती है।।58।।

---

[3]
अत्थेयं
(अस्तेय)

- **णिहिदं पदिदं सुविम्हिदं वत्थुं च सामी-अणुमदिं विणा गहणं; अचोरिय-वदं॥1॥**

  व्यक्ति की रखी, पड़ी, भूली हुई वस्तु को स्वामी की अनुमति के बिना ग्रहण नहीं करना; अचौर्य व्रत है।।1।।

- **पमादजोगेण विणा दत्तं परिग्गह-गहणं चोरियं। तं हिंसाकारणादो हिंसा एव॥2॥**

  प्रमाद के योग से बिना दिए परिग्रह को ग्रहण करना चोरी है। वह हिंसा का कारण होने से हिंसा है।।2।।

- **धण-धण्णादि-पदत्थाणि, पुरिसाण बहि-पाणा। जो पुरिसो अवर-धणधण्णादि-पदत्थाणं हरेदि, सो तस्स पाण-णासं करेदि॥3॥**

  जिनके भी धन-धान्य आदि पदार्थ हैं वे पुरुषों के बाह्य-प्राण हैं। जो पुरुष दूसरे के धन-धान्य आदि पदार्थों को हरण करता है, वह उसके प्राणों का नाश करता है।।3।।

- **मुणिजणा अदत्त-जल-मिट्टिगा वि ण गेण्हंति। ते अचोरिय-महव्वदी होंति॥4॥**

  मुनिजन बिना दिए हुए जल, मिट्टी भी ग्रहण नहीं करते हैं। वे अचौर्य महाव्रती कहलाते हैं।।4।।

- **सावगं जल-मिट्टिगाए अण्णत्त सामी-आणाए विणा किंपि वत्थुं ण गेण्हेज्जा।।5।।**

  श्रावक को जल मिट्टी के अलावा स्वामी की आज्ञा-बिना कोई वस्तु ग्रहण नहीं करना चाहिए।।5।।

- **जे णिम्मलजसं इच्छेंति, ता परवत्थुं ण गेण्हेज्जा।।6।।**

  जो निर्मल यश चाहते हैं, उन्हें पर की वस्तु ग्रहण नहीं करना चाहिए।।6।।

- **चोरस्स कोवि ण करेदि वीसासं।।7।।**

  चोर का कोई भी व्यक्ति विश्वास नहीं करता।।7।।

- **जे पुरिसा संसार-सायरादो उत्तारणेच्छं करेंति, ता परदव्व-हरणभावा सिविणे वि ण उप्पाएज्जा।।8।।**

  जो पुरुष संसार-समुद्र से पार होने की इच्छा रखते हैं, उन्हें चाहिए कि पर द्रव्य को चुराने के भाव स्वप्न में भी न लाएँ।।8।।

- **चोरस्स गुणा गउणा होंति तहा विज्जा विडंबणं भजेदि एवं अकित्ती मत्थगे आरोहेदि।।9।।**

  चोरी करने वाले के गुण तो गौणता को प्राप्त हो जाते हैं तथा विद्या विडम्बना को प्राप्त होती है और अकीर्ति मस्तक पर पग धरती है अर्थात् ललाट पर कलंक का टीका ही लगाती है।।9।।

- **इह पुढवीए परधणरूव-मंसगासे आसत्ताणं पुण्ण-रूवायरण-समूहा इह लोए हि णस्सेंति॥10॥**

  इस पृथ्वी में परधन रूपी माँस के ग्रास में आसक्त जनों के पुण्य रूपी आचरणों के समूह इसी लोक में नष्ट हो जाते हैं।।10।।

- **चोरस्स आयरणं ण होदि उत्तमं॥11॥**

  चोरी करने वाले का आचरण उत्तम नहीं होता।।11।।

- **चोरं जीवहिंसाए ण जायदे दया॥12॥**

  चोर को किसी भी जीव को मारने में दया नहीं आती।।12।।

- **जस्स होदि चोरिय-सहावो, तम्हि सगीय-मादू वि ण करेदि वीसासं; पुणो किं अण्णस्स वयणं?॥13॥**

  जिसका स्वभाव चोरी करने का हो जाता है, उस पर स्वयं की माँ भी विश्वास नहीं करती; अन्य की क्या बात है?।।13।।

- **भाउ-पिदु-पुत्त-सग-इत्थि-मित्तादी केई वि चोर-संसग्गं खणमेत्तस्स वि ण इच्छंति॥14॥**

  भाई, पिता, पुत्र, निज स्त्री, मित्र आदि कोई भी चोर का संसर्ग क्षण भर के लिए भी नहीं चाहते।।14।।

- **चोरस्स विवेगो विणस्सेंति॥15॥**

  चोरी करने वाला व्यक्ति विवेक को तो तिलांजलि दे ही देता है।।15।।

- **चोरियदो धम्मत्थकाममोक्ख-पुरिसत्था विणस्सेंति॥16॥**

  चोरी से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों ही पुरुषार्थ नष्ट हो जाते हैं।।16।।

- **चोरो भजेदि इह लोए अवजसं, परभवे दुग्गदिं च॥17॥**

  चोर इस लोक में अपयश और परभव में दुर्गति को प्राप्त होता है।।17।।

- **परदव्व-हारगं पडिक्खणं पीडेदि भयं॥18॥**

  परद्रव्य के हरण करने वाले को प्रतिक्षण भय सताता रहता है।।18।।

- **चोरचित्तं ण दु मणुवेसुं उववेसणे थिरेदि, णेव वणे होदि णिच्छिंतं। जहा- मिगस्स पच्छा आखेडो गच्छेदि दु सग-घाद-भयादो तस्स चित्तं णं थिरेदि; तहेव चोरं पि होदि णिरंतरं सग-बंधण-भयं॥19॥**

  चोर का चित्त न तो मनुष्यों में बैठने में स्थिर होता है, वन में ही निश्चिन्त रहता है। जैसे किसी मृग के पीछे शिकारी लग जाए तो अपना घात होने के भय से उसका चित्त ठिकाने नहीं रहता, उसी प्रकार चोर को भी अपने पकड़े जाने का भय निरंतर रहा करता है।।19।।

- **एत्थ हं बज्झावेमि, हिंसावेमि वा पीडावेमि इच्चादि-आउलत्तेण उम्मत्तमिव चोरो अहोणिसं जग्गेदि॥20॥**

  मैं यहाँ पकड़ा जाऊँगा या मारा जाऊँगा तथा यहाँ पीटा जाऊँगा इत्यादि आकुलता से पागल-सा होकर चोर रात-दिन जागता रहता है।।20।।

- **चोरस्स संसग्गो महाकट्ठदायगो होदि॥21॥**

  चोर का संसर्ग-मात्र महाकष्टदायक होता है।।21।।

- **इह लोए चोर-संगदीदो विराड-विराड-महापुरिसा वि लहुत्तं भजेंति॥22॥**

  इस लोक में चोर की संगति से बड़े-बड़े महापुरुष भी लघुता को प्राप्त हो जाते हैं।।22।।

- **चोर-पदिट्ठा तक्काले हि तिणंकुरो व्व णस्सेदि॥23॥**

  चोर की प्रतिष्ठा तत्काल तृणांकुर के समान नष्ट हो जाती है।।23।।

- **परधणं दुविहं चेदणं अचेदणं चेदि। इत्थि-पुरिस-दासी-दास-पोत्त-गो-महिस-गज-अस्स-पहुदीणि चेदणदव्वाणि तहा धण-धण्ण-सुवण्ण-पहुदीणि अचेदण-दव्वाणि। संजदं सग-संजम-रक्खणत्थं उहय-पर-दव्वाणं पुण्णदो चागं कादव्वं॥24॥**

  पर धन के दो भेद हैं—एक चेतन, दूसरा अचेतन। चेतन द्रव्य में स्त्री, पुरुष, दास, दासी, पौत्र, गौ, महिष, हाथी, घोड़े आदि, और अचेतन द्रव्य में धन, धान्य, स्वर्णादि आते हैं। संयमी पुरुष को अपने संयम की रक्षा करने के लिए उभय पर-द्रव्य का पूर्णतः त्याग कर देना चाहिए।।24।।

- **साहुपुरिसस्स परदव्वगेहणं तु बहुदूरं, दंतमल-सच्छत्थं तिणमवि अदत्तं ण गेण्हेज्जा॥25॥**

  साधु पुरुष के लिए पर द्रव्य का ग्रहण तो बहुत दूर की बात है, दंत-मल साफ करने हेतु तृण भी बिना दिए ग्रहण नहीं करना चाहिए।।25।।

- **अचोरियवद-पालगो अण्णजीवं चोरियत्थं णवि इरिदेज्जा, णेव अवरेण इरिदावेदि, णवि य उत्तविसए कस्सचिद हि अणुमोदेज्जा॥26॥**

  अचौर्य-व्रत का पालन करने वाले को न किसी को चोरी करने के लिए प्रेरित

करना चाहिए, न दूसरे के द्वारा प्रेरित कराना चाहिए, न ही उक्त विषय में किसी की अनुमोदना ही करना चाहिए।।26।।

- **सगेण अप्पजुत्त-असम्मत-चोरेण दत्तवत्थुं पि ण गेण्हेज्जा। चोरिय-वत्थुं कयणं पि दोसो त्थि॥27॥**

अपने द्वारा अप्रयुक्त असम्मत चोर के द्वारा लाई हुई वस्तु को देना नहीं चाहिए। चोरी की वस्तु खरीदना भी दोष है।।27।।

- **अप्पमुल्लवत्थुं बहुमुल्ले विक्कयणं पि दोसो त्थि। सासण-विरुद्धकज्जं पि चोरियं॥28॥**

अल्प मूल्य की वस्तु बहुमूल्य में बेचना भी दोष है। शासन के विरुद्ध कार्य करना भी चोरी है।।28।।

- **जो गेहत्थो णूण-तोलं किच्चा दाणं, अहिग-तोलं किच्चा गहणं च करेदि, सो वि अचोरियवदे माणुम्माण-णाम-दोसी होदि॥29॥**

कम तौल कर देना, अधिक तौल कर लेना जो गृहस्थ करता है, वह भी अचौर्य व्रत में मानोन्मान नाम का दोषी है।।29।।

- **वावारादीसुं उत्तम-वत्थुं दरिसेदूणं णिम्म-असुद्धवत्थुं दाणं, जहा-किट्टिम-रयद-हेम-इदरदव्वाणं मायापुव्वं वावारो; अचोरिय-वदपालणे पडिरूवगववहार-णाम-दोसो त्थि॥30॥**

व्यापार आदि में श्रेष्ठ वस्तु दिखाकर निम्न/अशुद्ध वस्तु देना, जैसे कृत्रिम चाँदी, सोना अथवा अन्य द्रव्य का कपटपूर्वक व्यापार करना अचौर्य-व्रत पालन में प्रतिरूपक-व्यवहार नाम का दोष है।।30।।

- **उत्त-पंचदोसाणं अभावं किच्चा णिद्दोस-अचोरियवद-पालणं अणिवारियं॥31॥**

  उक्त पाँच दोषों को टालकर निर्दोष अचौर्य-व्रत का पालन करना अनिवार्य है।।31।।

- **जदि कोवि वावारी करं ण देदि तहा वेदणभोत्ता सगसमए वेदणाणुसारेण कज्जं ण करेदि एवं जदि सासणं पि जणयाए सत्तीदो अहिगकरं गेण्हेदि, पुण सव्वे अचोरियवद-सुण्णा, चोरियकम्मे सहभागी वा॥32॥**

  यदि कोई व्यापारी टैक्स नहीं देता तथा वेतनभोक्ता अपने समय पर वेतनानुसार कार्य नहीं करता तथा शासन भी जनता की शक्ति से ज्यादा टैक्स देता है; तो यह सभी अचौर्य-व्रत से शून्य हैं अर्थात् चोरी के भागीदार हैं।।32।।

- **जो साहगो जिणाणा-अणुसारेण कहणं आयरणं च णवि करेदि, सो अत्थेयधम्मदो भिण्णो सुण्णो वा॥33॥**

  जो साधक जिन-आज्ञा के अनुसार कथन तथा आचरण नहीं करता, वह अस्तेय-धर्म से परे है।।33।।

---

[4]
बंभचेरं
(ब्रह्मचर्य)

- **अहिंसादि-गुणा जस्स पालणेण वड्ढेंति, सो बंभो तहा जो इमत्तो रित्तो सो अबंभो॥1॥**

  अहिंसादि गुण जिसके पालन करने से बढ़ते हैं, वह ब्रह्म कहलाता है तथा जो इससे रहित है वह अब्रह्म है।।1।।

- **चारित्तमोहणीय-कम्मोदए सदि राग-भावजुत्त-इत्थि-पुरिसाणं परोप्पर-फासेच्छा मेहुण-किरिया, सो हु अबंभो॥2॥**

  चारित्र-मोहनीय कर्म का उदय होने पर राग-परिणाम से युक्त स्त्री पुरुष के जो परस्पर स्पर्श करने की इच्छा होती है, उस कार्य को मैथुन कहते हैं; वही अब्रह्म है।।2।।

- **केण वि पयारेण अबंभस्स सेवणाभावो बंभचेरवदं। एवमेव जीवणसारो॥3॥**

  अब्रह्म का किसी भी प्रकार से सेवन नहीं करना ब्रह्मचर्य व्रत है। यही जीवन का सार है।।3।।

- **वद-रायो बंभचेरवदं॥4॥**

  व्रतों का राजा ब्रह्मचर्य व्रत है।।4।।

- **जं समया बंभचेरं, तं समया सयल-वदाणि होंति॥5॥**

  जिसके पास ब्रह्मचर्य व्रत है, उसके पास सभी व्रत हो सकते हैं।।5।।

- **बंभचेर-पालगो खलु अहिंसाधम्म-पालगो॥6॥**

  ब्रह्मचर्य का पालक ही अहिंसा-धर्म का पालक है।।6।।

- **अबंभसेवी महाहिंसगो। एगहुत्त-अबंभसेवणे णवकोडि-जीवाणं हिंसा होदि॥7॥**

  अब्रह्मचारी महाहिंसक होता है। एकबार के अब्रह्म सेवन में नव कोटि जीवों की हिंसा होती है।।7।।

- **कुसीलसेवगस्स महावेहवं पि मलमिव। सीलसहावजुदस्स दारिद्दं पि पुज्जं॥8॥**

  कुशील सेवी व्यक्ति का महान-वैभव भी मल के तुल्य है। शील-स्वभावी की दरिद्रता भी पूज्य है।।8।।

- **मणे कामो जायदे, तम्हा तं मणोजो वि भासदे। मण-वसीयरणं विणा मणोज-वसे ण होदि॥9॥**

  काम का जन्म मन में होता है, इसीलिए इसे मनोज भी कहते हैं। बिना मन को वश किए मनोज वश में नहीं हो सकता।।9।।

- **कामेण कुलीणत्त-लज्जादि-गुणा विणस्सेंति॥10॥**

  काम से कुलीनता, लज्जा आदि गुण समाप्त हो जाते हैं।।10।।

- **अहो अच्छेरं! जो कामबाणेण ताडिदो, सो धम्मरयणं णिच्छएण मुंचेदि। सो अण्णाणी मूढो णाणा-जम्मज्जिद-विउलदुहादो पीडिदो दुग्गदिं लहेदि॥11॥**

  आश्चर्य है कि जो पुरुष कामबाण से ताड़ित हुआ है, वह धर्म रूपी रत्न को निश्चय से छोड़ देता है। वह मूर्ख प्राणी अनेक जन्मों के बहुत भारी दुःखों से पीड़ित होता हुआ दुर्गति को प्राप्त होता है।।11।।

- **जो णरो बंभचेर-रहिदो, सो जत्थ तत्थ सव्वत्थ अप्पीयजणेहिं पि अवमाणिदो होदि॥12॥**

  जो नर ब्रह्मचर्य से रहित होता है, वह यहाँ-वहाँ सर्वत्र आत्मीयजनों से भी तिरस्कृत होता है।।12।।

- **बंभचेरवद-पालणं कुणेहि। बंभचेर-वदं सयल-धम्मेसुं उक्किट्ठ-धम्मो तहा तं बल-धिज्जं वड्ढगं सव्वकल्लाण-कारगं च॥13॥**

  ब्रह्मचर्य व्रत का तू पालन कर। ब्रह्मचर्य-व्रत सभी धर्मों में उत्कृष्ट धर्म है और वह बल और धैर्यता को बढ़ाने वाला है तथा सबके लिए कल्याणकारी है।।13।।

- **वीर-पुरिसाभरणं उत्तमगुण-दायारं च बंभचेरवदं॥14॥**

  वीर पुरुषों का आभूषण, उत्तम गुणों का दाता है; ब्रह्मचर्य व्रत।।14।।

- **सयल-उत्तमगुणेसुं बंभचेर-वदं उत्तमं। बंभचेर-अभावे सदि सव्वगुणा पलायंति॥15॥**

  सभी उत्तम गुणों में ब्रह्मचर्य-व्रत श्रेष्ठ है। ब्रह्मचर्य भंग करने से सभी गुण पलायन कर जाते हैं।।15।।

- **जस्स चित्ते कामग्गि-महादाहो विज्जमाणा, तस्स वदचारित्तरूव-समीचीण-रुक्खा होंति भम्हिभूदा॥16॥**

  जिस मनुष्य के चित्त में कामाग्नि की महादाह विद्यमान है, उसके व्रत चारित्र रूपी समीचीन वृक्ष भस्मीभूत हो जाते हैं।।16।।

- **उलूगं दिवसे ण दिस्सेदि, कागं रयणीए ण दिस्सेदि, णं कामुगं ण दिवसे णेव रयणीए दिस्सेदि॥17॥**

  उल्लू को दिन में नहीं दिखता, कौए को रात्रि में नहीं दिखता; परन्तु कामी को न दिन में और न ही रात्रि में दिखता है।।17।।

- **कामदाहे जलंतं जीवं पुण्णिमा-चंदस्स चंदिगा दाहेदि॥18॥**

  काम की दाह में जलते व्यक्ति को पूर्णिमा के चाँद की चाँदनी जलाती है।।18।।

- **णारीरूवं दट्ठूणं दिग्घ-साहगा संजमसेदुं तोडंति, पुणो सामण्ण-जणस्स किं वयणं? अदो बंभचारिणो णारी-संसग्गादो सगं पुहं कुज्जा॥19॥**

  नारी के रूप को देखकर बड़े-बड़े साधक भी संयम के सेतु को तोड़ डालते हैं, फिर सामान्य जन की बात ही क्या? अतः ब्रह्मचारी के लिए यह चाहिए कि— वह नारी के संसर्ग से अपने आपको पृथक् रखे।।19।।

- **विसइम्हि विदुत्त-माणवत्त-कुलीणत्त-सच्चत्तादि-गुणा णविणिवसंति॥20॥**

  विषयी के अन्दर विद्वता, मनुष्यता, कुलीनता और सत्यता आदि गुण नहीं रहते।।20।।

- **विसयभोगासत्तो आसत्तीए सगीय-दीणत्त-पेसुण्ण-अववाद-अवमाणादिस्स चिंतं ण करेदि। सो होदि पुण्ण-णिल्लज्जो त्ति॥21॥**

  जो विषय-भोगों में आसक्त हो जाता है, वह उसके कारण होने वाली अपनी दीनता, चुगली, बदनामी, अपमान आदि की परवाह नहीं करता। एकप्रकार से पूर्ण निर्लज्ज हो जाता है।।21।।

- **कामेच्छा-पीडिदो भोयण-दाण-विवेग-कत्तव्वाकत्तव्व-चिंतणं संपत्तिं पुज्जत्तं च णिच्छएण विमुंचेदि। एवं सगीयजीवणं पि पमुंचेदि॥22॥**

  कामेच्छा से पीड़ित जीव भोजन, दान, विवेक, कर्तव्य-अकर्तव्य के विचार को, संपत्ति को, पूज्यता को निश्चय से छोड़ देता है। और तो क्या, अपने जीवन को छोड़ बैठता है।।22।।

- **बंभचेरपालणं किच्चा इत्थिजादिमेत्तं पडि मादुभगिणी-भावं धारेज्जा, एवमेव उत्तमो मग्गो॥23॥**

  उत्तम मार्ग यही है कि—ब्रह्मचर्य का पालन कर, स्त्री जाति मात्र के प्रति मातृ एवं भगिनी भाव रखे।।23।।

- **सगीय-कलत्तं कलत्तदिट्ठीए, सेस-सव्वाओ इत्थीओ मादु-ससा-दिट्ठीए पस्सेज्जा॥24॥**

  अपनी स्त्री के अलावा अन्य स्त्रियों को माँ-बहिन की दृष्टि से देखना चाहिए।।24।।

- **सगीय-संजम-जसरक्खणत्थं बंभयारिं एयंते सग-जणणीए वि ण भासेज्जा॥25॥**

  ब्रह्मचारी को अपने संयम एवं यश की रक्षा के लिए एकान्त में स्व जननी से भी बात नहीं करना चाहिए।।25।।

- **बंभचेर-रक्खणत्थं गरिट्ठ-इट्ठ-पदत्थ-सेवणं ण कुणेहि, इत्थीणं मणोहरंगाइं ण पस्सेहि तहा देह-सिंगारं पि ण कुणेहि। इमेसुं कारणेसुं चिंतगो णिद्दोससंजमं पालेदि॥26॥**

  ब्रह्मचर्य रक्षा के लिए गरिष्ठ एवं इष्ट पदार्थों का सेवन न करें और स्त्रियों के मनोहर अंग न देखें तथा शरीर का शृंगार न करें। इन कारणों पर ध्यान रखने वाला निर्दोष संयम का पालन कर सकता है।।26।।

- **इत्थी अणलमिव पुरिसो णवणीदमिव होदि। जहा- अणल-संपक्के सदि णवणीदं विलीयदि, तहेव इत्थीणं संपक्के सदि पुरिस-संजमं विणस्सेदि॥27॥**

  स्त्री अग्नि के समान और पुरुष मक्खन के समान होता है। जैसे अग्नि के संपर्क में आते ही मक्खन पिघल जाता है, ठीक उसी प्रकार स्त्रियों के सम्पर्क में आने पर पुरुष संयम को नष्ट कर डालता है।।27।।

- **बंभचेर-रक्खाए जावदियं सजगत्तं पुरिसस्स अत्थि, तावदियं सजगत्तं इत्थीणं पि जाणेज्जा। विसेसेण सारल्ल-वेसभूसं धारेहि तहा भोदिग-वत्थादो पुहं वसेहि॥28॥**

  ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए जितनी सावधानी पुरुष के लिए है उतनी ही स्त्रियों के लिए भी समझना चाहिए। विशेष-सादगी वेष-भूषा धारण करें और आधुनिक वस्त्रों से परे रहें।।28।।

- **साहगस्स कदावि एगंते इत्थीए चरिचं वत्तं चावि ण कुज्जा जदिवि सा सामण्ण-इत्थी होदु वा अज्जिगा होदु। एवं गिहत्थ-अवत्थाए मादू वि किमु ण होदु॥29॥**

  साधक के लिए किसी भी अवस्था में एकान्त में किसी भी स्त्री से चर्चा-वार्ता नहीं करना चाहिए, चाहे वह सामान्य स्त्री हो या साध्वी हो। और तो और वह गृहस्थ अवस्था की माँ भी क्यों न हो।।29।।

- **जहा- वज्जवादेण ताडिद-पव्वदा झत्ति णस्सेंति, तहेव जोवणेण मदोम्मत्त-इत्थीणं णेत्त-कडक्खाणं पहारेण सीलवंताणं सीलं णस्संति। अदो साहगस्स सील-रक्खणत्थं विसम-लिंगीदो अहिग-संपक्कं ण कुज्जा॥30॥**

  जैसे वज्रपात से ताड़े हुए पर्वत शीघ्र खंड-खंड हो जाते हैं, वैसे ही यौवन से मदोन्मत्त स्त्रियों के नेत्र-कटाक्षों के प्रहार से शीलवानों के शील खंड-खंड हो जाते हैं। अतः साधक को चाहिए कि वह शील-रक्षा के लिए विषम-लिंगियों से ज्यादा संपर्क न रखे।।30।।

- **जो समणो तवस्सी वदी मउणी संवरसरूवो जिदिंदियो होदु तहा इत्थि-संगदिं कुणेदु, सो सगीय-संजमे कलंकं संलग्गेदि॥31॥**

  जो मुनि, तपस्वी, व्रती, मौनी, संवर स्वरूप जितेन्द्रिय हो और स्त्री की संगति करता हो, वह अपने संयम में कलंक लगा लेता है।।31।।

- **ते साहु-पुरिसा धण्णा, जे जुवा-दसाए हि इत्थि-संगं चएदूणं आदकल्लाण-मग्गे गमेंति॥32॥**

  वे संत पुरुष धन्य हैं, जो युवा अवस्था में ही स्त्रीसंग त्यागकर आत्म-कल्याण के मार्ग पर चल रहे हैं।।32।।

- **ते समणा वरेण्णा, जे इत्थि-कडक्खरूवा तिव्वसरा सगीय-बंभत्थेण णस्सेज्जा॥33॥**

  वे मुनि श्रेष्ठ हैं, जिन्होंने स्त्रियों के कटाक्ष रूपी तीव्र बाणों को अपने ब्रह्मास्त्र से नष्ट कर दिया है।।33।।

- **जदा इत्थि संकप्प-लेसमेत्तं पि चित्ते मदण-जरं वड्ढेदि, दु तेसिं णिगडत्तं किं चारित्तलच्छिं ण णस्सेहिदि?॥34॥**

  जब स्त्रियों के संकल्प का लेशमात्र भी मन में मदन ज्वर को बढ़ा देता है, तो उनकी निकटता क्या चारित्र रूपी लक्ष्मी को नष्ट-भ्रष्ट नहीं करेगी?।।34।।

- **जहा कुट्ठरोगी देहं कंडूयणेणं तावणेणं च सुहं मण्णेदि, तहेव तिव्वकामरोगेण दुहिद-पुरिसो वि मेहुण-कम्मं सुहं मण्णेदि। इदं विउल-विपज्जयं। जहा– कंडूयणेण कंडूदी वड्ढित्ता अंते तिव्व-जलणं उप्पादित्ता पीडेदि, तहेव इत्थि-सेवणं पि कामेच्छं उत्तरोत्तरं वड्ढावेदि एवं अंते कट्ठदायग-ट्ठिदी जायदे॥35॥**

  जैसे कोढ़ी पुरुष शरीर को खुजाने तथा तपाने से सुख मानता है, ठीक उसी प्रकार तीव्र काम-रोग से दुःखित हुआ पुरुष भी मैथुन-कर्म को सुख मानता है। यह बड़ा विपर्यय है। जैसे खुजाने से खाज बढ़कर अंत में तीव्र जलन पैदाकर कष्ट देती है, वैसे ही स्त्री-सेवन भी कामेच्छा को उत्तरोत्तर बढ़ाता है और अंत में कष्टदायक स्थिति बनती है।।35।।

- **कामरोगो भाव-णिम्मलदाए उवसमेदि॥36॥**

  काम-रोग परिणामों की निर्मलता से ही शांत होता है।।36।।

- **आद-सरूवे लीणत्तं सच्चत्थ-बंभचेरं॥37॥**

  आत्म-स्वरूप में लीन होना, सत्यार्थ ब्रह्मचर्य है।।37।।

- **जोगीजणा णिय-रमणीए रमेंति, तम्हा ता संसारंगणाओ कदावि ण खोभंति॥38॥**

  योगी निज-रमणी में रमण करते हैं, इसलिए उन्हें संसार की अङ्गनाएँ कभी विचलित नहीं कर पातीं।।38।।

- **सयल-कामंगाइं पस्सित्ता वि जेसिं दिट्ठी कामरूवा ण होदि, एरिसा जोगिणो वंदणिज्जा॥39॥**

  सम्पूर्ण कामाङ्गों को देखने पर भी जिनकी दृष्टि काम रूप नहीं होती, ऐसे योगी वंदनीय हैं।।39।।

- **वीरिय-रक्खा आदरक्खा। जो वीरियं णस्सेदि, सो बुद्धिं बलं विवेगं च णस्सेदि॥40॥**

  वीर्य-रक्षा आत्म-रक्षा है। जो वीर्य को नष्ट करता है वह बुद्धि, बल और विवेक को नष्ट करता है।।40।।

- **कुसीलसेवी झत्ति हु जरं आमंतेदि॥41॥**

  कुशील-सेवी शीघ्र ही जरा को आमंत्रण दे देता है।।41।।

- **जस्स कामो ईसो णत्थि, सो हि वीसवंदणीयो, वीसपहू तहा वीसेसो त्ति॥42॥**

  विश्व वन्दनीय, विश्वप्रभु, विश्वईश वही है, जिसका काम ईश नहीं है।।42।।

- **अबंभदो गुरू णो कोवि दुराचारो॥43॥**

  अब्रह्म से बड़ा कोई दुराचार नहीं है।।43।।

- **सीलदो गुरू णो कोवि सदाचारो॥44॥**

  शील से बड़ा कोई सदाचार नहीं है।।44।।

- **सीलसहावी-चरणेसुं देवा वि णमस्संति॥45॥**

  शील-स्वभावी के चरणों में देव भी नमस्कार करते हैं।।45।।

- **बंभयारी सव्व-जणस्स पुज्जो होदि,एवं दुराचारी सव्वत्थ णिंदं भजेदि॥46॥**

  एक ब्रह्मचारी जन-जन का पूज्य होता है, वहीं दुराचारी दर-दर ठुकराया जाता है।।46।।

- **सीलवदादो गुरू कोवि जसो णत्थि तहा कुसीलादो गुरू कोवि अवजसो णत्थि।।47।।**

  शीलव्रत से बड़ा कोई यश अर्थात् कोई दूसरा व्रत नहीं और कुशील से बड़ा कोई अपयश नहीं है।।47।।

- **विगारी-भावा जीवं णाणसुण्णं करेंति।।48।।**

  विकारी-भाव जीव को ज्ञान-शून्य बना देते हैं।।48।।

- **माणवत्त-सिहरो सीलपालणं।।49।।**

  मानवता का शिखर शील पालन है।।49।।

- **आदस्स पढमो रिवू कुसीलो त्थि।।50।।**

  कुशील आत्मा का प्रथम शत्रु है।।50।।

- **बंभचेर-पालणेण णाण-विवेग-विगासो त्थि।।51।।**

  ज्ञान, विवेक का विकास ब्रह्मचर्य के पालन से है।।51।।

- **कामुगो गुरु-अणादरं पि कुव्वदि।।52।।**

  कामी व्यक्ति गुरुओं का भी अनादर कर बैठता है।।52।।

- **सीलजुदस्स पत्तेगठाणे सम्माणो होदि तहा कुसीलवंतो पत्तेग-ठाणे अवमाणं लहेदि।।53।।**

  शील से युक्त व्यक्ति का स्थान-स्थान पर सम्मान होता है तथा कुशीलवान हर स्थान पर अपमान पाता है।।53।।

- **अबंभ-सेवणेण तण-धण-जसा य विलीयंते॥54॥**

  अब्रह्म सेवन से तन, धन और यश तीनों पलायन कर जाते हैं।।54।।

- **इह लोए सिंह-समसु-केसं सप्पमणिं च आणमाणा तहा हत्थिदंतं फेडमाणा जोद्धा-सुभडा बहू संति, णं मदणस्स मद्दगा वीरा थोवा संति॥55॥**

  इस लोक में सिंह की मूँछ के बाल, सर्प की मणि को लाने वाले और हस्ति के दाँत निकालने वाले योद्धा/सुभट बहुत हैं, परन्तु मदन का मर्दन करने वाले वीर अल्प हैं।।55।।

- **हे पण्ण! जदि तुं सम्माणं इच्छेसि दु मदण-माणं भंगेहि, सयल-वीसो तुज्झ सम्माणं करेहिदि॥56॥**

  हे प्रज्ञ! यदि तू सम्मान चाहता है तो मदन के मान को भंग कर दे, सारा विश्व तेरा सम्मान करेगा।।56।।

- **अबंभो माणवं माणवत्तादो ऊसरेदि॥57॥**

  अब्रह्म, मानव को मानवता से हटा देता है।।57।।

- **जत्थ सीलो तत्थ संपत्ती तहा जत्थ कुसीलो तत्थ णियमेण विवत्ती॥58॥**

  जहाँ शील है, वहाँ सम्पत्ति है और जहाँ कुशील है वहाँ विपत्ति नियम से है।।58।।

- **सील-पहावेण अग्गी वि सीयलो होदि तहा सूली वि होदि सिंहासणं॥59॥**

  शील के प्रभाव से अग्नि भी शीतल हो जाती है और शूली भी सिंहासन बन जाता है।।59।।

- **जहा सुगंधहीण-पुप्फसोहा णत्थि, तहेव सीलहीण-पुरिस-सोहा णत्थि॥60॥**

  जिस तरह सुगंध रहित पुष्प की शोभा नहीं होती, उसी प्रकार शील रहित पुरुष की शोभा नहीं होती।।60।।

- **जहा पदिरहिद-विहवा-सिंगारो सोहाहीणो, तहेव सीलरहिद-णाणी-णाणं णेयं॥61॥**

  पति रहित विधवा का शृंगार शोभाहीन होता है, ठीक उसी प्रकार शील रहित विद्वान का ज्ञान होता है।।61।।

- **जहा सुक्ख-ईखं चूसणादो तम्हि रसं ण णिज्जेदि, तहेव बंभचेर-रहिद-पुरिसणाणचारित्तं च होदि णीरसं, तम्हि सगप्प-रसाणंदो ण लहेदि॥62॥**

  सूखे गन्ने को चूसने से उसमें रस नहीं निकलता, ठीक उसी प्रकार ब्रह्मचर्य रहित पुरुष का ज्ञान और चारित्र नीरस है, उसमें स्वात्मरस का आनंद नहीं मिलता।।62।।

- **सत्तु-गेहे भिक्खा-जायणं तु वरं, णं सीलं धणिग-हवणं वरं णत्थि॥63॥**

  शत्रु के घर भीख माँगना तो श्रेष्ठ है, परन्तु शील को बेचकर धनी बनना श्रेष्ठ नहीं है।।63।।

- **सीलेस्सर-जुद-दारिद्दं वरं, णं सील-भंजगस्स चक्कीपदो वरो णत्थि॥64॥**

  शीलैश्वर से युक्त दरिद्रता अच्छी है, परन्तु शील-भंगी का चक्री पद श्रेष्ठ नहीं है।।64।।

- **इह लोए मोहकम्मादो गुरू कोवि रिवू णत्थि, कोह-समाणो कोवि अग्गी णत्थि, णाणमिव किंपि सुहं णत्थि तहा काम-समाणा कावि वाही णत्थि॥65॥**

  इस लोक में मोह कर्म से बड़ा कोई शत्रु नहीं है, क्रोध के समान कोई अग्नि नहीं, ज्ञान के समान कोई सुख नहीं तथा काम के समान कोई व्याधि नहीं है।।65।।

- **कामरोगी कस्सचिदवि वेज्जस्स ओसहेण णिरोगी ण होदि॥66॥**

  काम-रोगी किसी वैद्य की औषधि से ठीक नहीं हो पाता।।66।।

- **कामपीडा-समणत्थं एगं हि ओसहं, तं सगतच्च-चिंतणं आदणाणं भेदविण्णाणं च, णो कोवि अण्णो उवायो॥67॥**

  काम की पीड़ा के शमन के लिए एक ही औषधि है, वह है स्वतत्त्व चिंतवन, आत्मज्ञान, भेद-विज्ञान, अन्य कोई उपाय नहीं है।।67।।

- **कामीजीवो खयरोगं भजेदि। कामुगस्स बुद्धि-विवेग-देहं च किसत्तं भजेज्जा एवं पुण्णक्खयो वि होदि॥68॥**

  कामी जीव क्षय रोग को प्राप्त होता है। कामी की बुद्धि, विवेक, शरीर कृशता को प्राप्त करते हैं और पुण्य का भी क्षय होता है।।68।।

- **कामेच्छा-दाहं सहणं वरं, णं बंभचेर-खंडणं अवरं; णवरि सीलखंडणे सदि णियमेण णरगे गच्छेदि॥69॥**

  काम की चाह-रूपी-दाह को सहन कर लेना अच्छा है, परन्तु ब्रह्मचर्य का खण्डन करना अच्छा नहीं, क्योंकि शील-खण्डन होने पर नियम से नरक में जाता है।।69।।

- **कामदाहो सदेव ण हवेदि। अयं थोवकाले हि समेदि, णं कामसेवणादो जो महापाव-कम्मबंधो होदि, सो चिरकाल-पज्जंतं भवे णरगादि-गदीणं दुहकारणं होदि॥70॥**

  काम की दाह सदाकाल नहीं रहती। यह अल्पकाल में ही शांत हो सकती है, परन्तु कामसेवन से जो महापाप कर्म का बन्ध होता है, वह चिरकाल तक संसार में नरकादि गतियों के दुःख का कारण करता है।।70।।

- **एगदिवसं पि सीलभंजगो कोडि-भवेसुं वेदणं भजेदि॥71॥**

  एक दिन शील भंग करने वाला करोड़ों भवों में वेदना को प्राप्त होता है।।71।।

- **कामो दोसभंडारो, गुण-णासगो, पावबंधू, आवदा-सामी वा॥72॥**

  काम दोषों का खजाना है, गुणों का नाशक है, पाप का बन्धु है, आपदाओं का स्वामी है।।72।।

- **जो तरुणी-कडक्ख-सरादो ऊसरेदि, सो हु सूरो॥73॥**

  जो तरुणियों के कटाक्षों के बाणों से दूर रहता है, वही शूर है।।73।।

- **सत्तिहीणस्स हिदयो विसएहिं मोहेदि तहा अदिसयरूवेण पजलेदि जहा अणलेण हि जलेज्जा॥74॥**

  शक्तिहीन पुरुष का हृदय विषयों के द्वारा मोहित होता है और अतिशय रूप से जलता है, मानो अग्नि के द्वारा ही जल रहा हो।।74।।

- **इंदियकसायस्स तिव्वभावेण सगीयचारित्तं तिणमिव मण्णंता उच्चंत-हीण-अण्णाणीजीवा कुसीलविसयग-किरियाचरणं कुणंते॥75॥**

  इन्द्रिय और कषाय के तीव्र परिणाम के कारण अपने चारित्र को तिनके के बराबर गिनते हुए अत्यंत हीन अज्ञानी जीव कुशील संबंधी क्रिया का आचरण करते हैं ।।75।।

- **जदिवि पुरिसो वुड्ढो आइरियो तवस्सी होदु तहा सव्वस्स वीससणीएण सह हि गुणवंतो वि होदु, णं जदि सो इत्थि-जणेसुं करेदि वीसासं तु झत्ति हु अवजसं भजेहिदि॥76॥**

  पुरुष चाहे वृद्ध, आचार्य, तपस्वी हो तथा सभी का विश्वसनीय होने के साथ ही गुणवान भी हो, किन्तु यदि वह स्त्रीजनों पर विश्वास करता है तो शीघ्र ही अपयश को प्राप्त होगा।।76।।

- **साहगं संजमसीलरक्खाए वुड्ढजण-संगदिं कादव्वं॥77॥**

  साधक को संयम और शील की रक्षा के लिए वृद्धजनों की संगति करना चाहिए।।77।।

- **वुड्ढसेवा पावं णस्सेदि, हिदयं सुज्झेदि, सत्तिं वड्ढेदि, कोहं णासेदि, विणयजुदं कुणेदि तहा माणरहिदं करेदि। वुड्ढ-सेवा कस्स अभिट्ठस्स सिद्धिं ण कुव्वेदि? सयल-इट्ठसिद्धिं करेदि॥78॥**

  वृद्ध-सेवा पाप को नष्ट करती है, हृदय को पवित्र करती है, शक्ति को बढ़ाती है, क्रोध का नाश करती है, विनय से युक्त करती है और मान से रहित करती है। वृद्ध-सेवा किस अभीष्ट की सिद्धि को नहीं करती? अपितु सभी इष्ट सिद्ध करती है।।78।।

- **एत्थ दंसण-णाण-चारित्त-तव-वुड्ढा हि गेज्झा। मेत्त आउवुड्ढं ण गेण्हेज्जा। केसा सुक्का, णं वासणा एगागी-विज्जमाणा, ते हु जुवा। सीलरक्खणत्थं एरिसादो जुवादो ऊसरेज्जा॥79॥**

  दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप से जो वृद्ध हैं, वे वृद्ध ही यहाँ ग्राही हैं। उम्र-वृद्ध मात्र ग्रहण नहीं करना। बाल सफेद हैं, पर वासना एकाकी विद्यमान है, वे युवा ही हैं। शील-रक्षा के लिए ऐसे युवा पुरुषों से दूर रहना चाहिए।।79।।

- **जेट्ठमासस्स मज्झण्हादिच्चो वि माणवं तहेव संतावयारी ण होदि, जहेव वड्ढंतो कामो होदि संतावयारी॥80॥**

  ज्येष्ठ मास के मध्याह्न का सूर्य भी मानव को वैसा संतापकारी नहीं होता, जैसा बढ़ता हुआ काम संतापकारी होता है।।80।।

- **आदिच्चो दु दिवसम्हि किल सोसेदि, णं कामरोगी अहोणिसं सूसेदि तहा देदि कट्ठं॥81॥**

  सूर्य तो दिन में ही सुखाता है, परन्तु काम का रोगी रात-दिन सूखता है और कष्ट देता है।।81।।

- **आसीविस-सप्पेण दंसिदपुरिसस्स सत्त-वेगा होंति, णं कामसप्पेण दंसिद-पुरिसस्स दह-भयंकरवेगा होंति। पढमे वेगे कामी होदि सोगजुत्तो, विदीए वेगे सो इट्ठ-इत्थिं दंसणेच्छं करेदि, तिदीए वेगे अदिगदिसील-सासं गेण्हेदि, चदुत्थे वेगे जरो जायदे, पंचमे वेगे देहं संजलेदि, छट्ठे वेगे भोयणं ण रुच्चेदि, सत्तमे वेगे जायदे मुच्छा, अट्ठमे वेगे जीवो होदि उम्मत्तो, णवमे वेगे किंचणं ण जाणदे तहा दसमे वेगे पाणविमोयणं करेदि। एदे सव्वे वेगावेगा कामवासणा-तिव्वदाए हि होंति॥82॥**

  आशी विष सर्प द्वारा काटे हुए पुरुष के सात ही वेग होते हैं किन्तु, काम रूपी सर्प द्वारा काटे हुए सर्प के दश भयंकर वेग होते हैं।

  प्रथम वेग में कामी व्यक्ति शोक से युक्त होता है, दूसरे वेग में वह इष्ट स्त्री को देखने की इच्छा करता है, तीसरे वेग में जोर-जोर से श्वास लेने लगता है। चौथे वेग में ज्वर आ जाता है, पाँचवे वेग में शरीर जलने लगता है, छठवें वेग में भोजन नहीं रुचता, सातवें वेग में मूर्छा आती है। इसी प्रकार आठवें में व्यक्ति पागल हो जाता है, नौवें वेग में कुछ जान नहीं पाता और दसवें वेग में प्राणों को ही छोड़ देता है। ये सभी वेग-आवेग कामवासना की तीव्रता में ही होते हैं।।82।।

- **जो संकप्परूव-अंडम्हि जायदे, विसरूव-बामी-बिले णिवसेदि, जो वड्ढिद-चिंताए महाकोविदो, जो लज्जरूव-कंचुलिं मुंचेदि, दप्परूव-भयंकर-दंतो जस्स तहा रदिरूव मुहो त्थि; एरिसेण कामवासणारूव-किण्हसप्पेण दंसिदपुरिसो सहसा णस्सेदि॥83॥**

  जो संकल्प रूपी अंडे में पैदा हुआ है, विषय रूपी बामी के बिल में रहता है, बढ़ती हुई चिंता से जो महा क्रोधित है, लज्जा रूपी कॉचली जिसने छोड़ दी है, दर्प रूपी भयंकर जिसकी दाढ़ है और रति रूप मुख है; ऐसे काम वासना रूपी काले सर्प से काटा हुआ पुरुष शीघ्र नष्ट हो जाता है।।83।।

- **बंभचेरधम्मो चेदण्णभोगो॥84॥**

  चैतन्य का भोग ब्रह्मचर्य-धर्म है।।84।।

- **सगवीरिय-रक्खणं परमो धम्मो। जो णस्सेदि सगसत्तिं, सो पावी॥85॥**

  स्व वीर्य-रक्षा परमधर्म है। जिसने स्वशक्ति का नाश किया, वह पापी है।।85।।

- **भारदीय-सक्किदी णत्थि भोगसक्किदी, बंभ-सक्किदी एव। भारदीय-भूमी बंभचारी-साहु भगवंताणं च जम्मेदि॥86॥**

  भारतीय संस्कृति भोग-संस्कृति नहीं, ब्रह्म-संस्कृति है। यहाँ की भूमि ने ब्रह्मचारियों, संतों, भगवन्तों को उत्पन्न किया है।।86।।

- **सगसील-पालणं जदि जीवो करिज्जदे दु सीलभंगो व्व कुकिच्चाइं सयमेव णस्सेंति॥87॥**

  स्वशील का पालन व्यक्ति करने लगे तो शील भंग, बलात्कार जैसे कुकृत्य स्वयमेव समाप्त हो जायेंगे।।87।।

- **सच्च-संजम-सील-पालणं आदाणंदे रमणं च, अज्झप्प-दिट्ठी॥88॥**

  सत्य, संयम, शील का पालन आत्मानंद में रमण, यही अध्यात्म-दृष्टि है।।88।।

---

[5]
अपरिग्गहो
(अपरिग्रह)

- **कदाचिद आदिच्चो सगीय-पगासं मुंचेदु तहा सुमेरू-पव्वदो सगीय-अचलत्तं पि मुंचेदु, णं सग्गंथ-साहगा कदावि णिस्संक-णिप्पुह-जिदिंदिया ण होंति॥1॥**

  कदाचित् सूर्य अपना प्रकाश छोड़ दे और सुमेरू पर्वत अपनी अचलता भी छोड़ दे, परन्तु परिग्रह सहित साधक कदापि निःशंक, निस्पृह, जितेन्द्रिय नहीं हो सकते।।1।।

- **परिग्गह-लोलुवी पायो अंधो व्व होदि॥2॥**

  परिग्रह-लोलुपी पुरुष प्रायः अंधे के समान होता है।।2।।

- **धणी परिग्गही ण कदावि सुहिदा हवीअ णेव होस्संति। तेसिं धणं कोवि ण हरेज्जा, इमा आसंका सदेव ता होदि। सो हु सुहिदो पुरिसो जो संतोसधण-जुत्तो तहा इच्छाचागी य॥3॥**

  धनी परिग्रही न कभी सुखी हुए, होंगे। उन्हें यह आशंका हमेशा रहती है कि उनका धन कोई न ले जाए। सुखी वही पुरुष है जो संतोष-धन से युक्त तथा इच्छाओं के त्यागी है।।3।।

- **थोवधणरूवपंकसेवाले खचिद-गुणवंत-पुरिसो वि इह लोए खणद्धे लक्खविहि-दोसेहिं कलंकिदो होदि॥4॥**

  थोड़े से धन रूपी कीचड़ व शैवाल में फंसा हुआ गुणवान पुरुष भी इस जगत् में तत्काल लक्षविधि दोषों से कलंकित होता है।।4।।

- **णिप्पुहत्तेण साहु-अहिणाणं, णवरि आडंबरेहिं साहु-णिम्मल-छवी मइलेदि॥5॥**

  निस्पृहता से ही साधु की पहचान है, क्योंकि आडम्बरों से साधु की निर्मल छवि धूमिल होती है।।5।।

- **इदिहासो सक्खी, अज्जपज्जंतं जावदिया वि सज्जणा उवहासं भजीअ, ते सव्वे धण-धरणी-णारी-णिमित्तेण एव तहा ते सगीय-पवित्तजस-पडागं च णस्सीअ॥6॥**

  इतिहास साक्षी है, आज तक जितने भी सज्जन उपहास को प्राप्त हुए हैं, वे सब धन, धरती और नारी के कारण ही हुए हैं और वे अपनी पवित्र यश पताका को नष्ट कर गए।।6।।

- **परिग्गह-पंकलित्तो जदिवि जोगी वि होदु, सो सच्चसरूव-आदझाणं ण भजेदि॥7॥**

  परिग्रह के पंक में फंसा व्यक्ति चाहे योगी भी क्यों न हो, वह सत्य स्वरूप आत्मध्यान को प्राप्त नहीं कर सकता।।7।।

- **जो समत्थ-परिग्गहरहिदो इंदियसंवरं करेदि, एसो थिरचित्त-संजदो हि णिव्वियप्पझाण-धुरं धारेदि, णो अण्णो॥8॥**

  जो समस्त परिग्रह से रहित तथा इन्द्रियों का संवर करने वाला हो, ऐसा स्थिरचित्त संयमी ही निर्विकल्प ध्यान की धुरा को धारण कर सकता है, अन्य नहीं।।8।।

- **परिग्गहरहिद-जीवो भवणे वणे उववणे वा वि वसेदु, णं सो पडिक्खणं णिब्भयो वसेदि, तं ण होदि चोरादि-भयं च॥9॥**

  परिग्रह रहित प्राणी चाहे भवन, वन अथवा उपवन में रहे, परन्तु वह प्रतिक्षण निडर रहता है, उसे चोर आदि का भय नहीं रहता।।9।।

- **जस्स चित्तं परिग्गहरूव-पिसाचेण णाणाहुत्तं णाणा पयारेण पीडिदं, तस्स चित्तं झाणकाले कदावि ण होदि थिरं॥10॥**

  जिसका चित्त परिग्रह रूपी पिशाच से अनेक बार अनेक प्रकार से पीड़ित है उसका चित्त ध्यान करते समय कदापि स्थिर नहीं हो सकता।।10।।

- **जस्स मणो धणे लवलीणो, सो किं हिंसादि-कज्जेहिं पावज्जणं ण कुणीअ तहा तस्स धणस्स उवज्जण-रक्खणवयादो दुहाणलेण को ण संजलीअ? तेण चिंतेदूणं धणप्पुहत्तं मुंच, जेण तुं विसय-सहिदं पावताव-एगत्तं च ण भजेसि॥11॥**

  जिसका मन धन में लवलीन है, उसने क्या हिंसादि कार्यों से पापार्जन नहीं किया तथा उस धन के उपार्जन, रक्षण एवं व्यय करने से दुःख रूपी अग्नि से कौन नहीं जला? इस कारण पहले ही विचार कर धन-स्पृहता (इच्छा) को छोड़ जिससे तू विषयों सहित पाप-ताप की एकता को प्राप्त न हो।।11।।

- **हे अप्पा! तुं धणचिंताए चिंतणं कहं कुणेसि? पुव्वे बहु-धणं अज्जेमि, पुणो रक्खणं करिस्सामि, उवभोगं च कुणिहिमि। किं तुमं जमराय-भयं णत्थि? आउकम्मेण तुं एवंविह कुच्छिद-चिंतणं कुणेसि। हे पण्ण! कोहायमाणजमो कदा तुमं इमेहिं चिंतणेहिं जुत्तदसाए उत्थेहिदि? इमम्हि चिंतेहि॥12॥**

  हे आत्मन् ! तू धन की चिन्ता का चिन्तवन कैसे कर रहा है? पूर्व में अच्छा धन कमाऊँ, फिर रक्षा करूँगा, उपभोग करूँगा। क्या तुझे यमराज का भय नहीं? आयुकर्म से तू इस प्रकार का कुत्सित विचार कर रहा है। हे प्रज्ञ! क्रोधायमान यम कब तुझे इन विचारों से युक्त अवस्था में उठा ले जाये? इस पर चिंतन कर।।12।।

- **सयलपावमूलं परिग्गहो। जे पाव-कद्दमादो सगीयरक्खणं इच्छेंति ते परिग्गह-सरोवरे ण पवेसेंतु॥13॥**

  सम्पूर्ण पापों का मूल परिग्रह है। जो पाप-कर्दम से अपनी रक्षा चाहते हैं, वे परिग्रह-सरोवर में प्रवेश न करें।।13।।

- **आकिंचण्णधम्मं पडि पदण्णासं कुणेहि। इहलोए आदलोगो हि मे दव्वं, अण्णं तिलमेत्तं पि परदव्वं णो मज्झं। एरिसं णिम्मलं चिंतणं कुणेहि तहा आयरणे धारेहि॥14॥**

  आकिंचन्य-धर्म की ओर कदम बढ़ाएँ। इस लोक में आत्मलोक को छोड़कर अन्य तिलमात्र भी मेरा पर-द्रव्य नहीं है। ऐसा निर्मल चिन्तवन करें तथा आचरण में लाएँ।।14।।

- **गेहत्थसावगा धण-धण्णादि-परिग्गहपरिमाणं किच्चा तादो अहिगाकंखहीणा होंति। इदं परिग्गह-परिमाण-अणुव्वदं। महव्वदीणं मुणीणं तु सयल-परिग्गहाणं पुण्णचागो होदि, णं गेहत्थो आकंखाओ सीमिदत्थं परिग्गह-परिमाणं कुणेदि। वीसे इमस्स अणुव्वदस्स णूणत्तेणं हि असंती अत्थि। जीवस्स इच्छाओ असीमाओ, ताओ कदावि ण समावेस्संति। अदो जे संति-वरणं इच्छेंति, ते परिग्गह-सीमं णियमेण णिच्छिदं कुणेहि॥15॥**

  गृहस्थ-श्रावक धन, धान्य आदि परिग्रह का परिमाण (सीमा) कर उससे अधिक इच्छा रहित होते हैं। यह परिग्रह परिमाण नाम का अणुव्रत है। महाव्रती मुनियों का तो सम्पूर्ण परिग्रहों का पूर्ण त्याग होता है, परन्तु गृहस्थ आकांक्षाओं को सीमित रखने हेतु परिग्रह का परिमाण कर सकता है। विश्व में इस अणुव्रत की कमी के कारण ही अशांति है। इच्छाएँ व्यक्ति की असीम हैं, वे कभी भी पूर्ण नहीं होगी। अतः शांति का वरण जिन्हें करना हो, वे परिग्रह की सीमा जरूर निश्चित करें।।15।।

- **देसस्स रायणेदारा धम्मसमाय-णेदारा य सगीय-सगीय-परिग्गहसीमं कुणेज्जा दु देसे दारिद्दं विप्पणस्सेदि॥16॥**

  देश के राजनेता, धर्म समाज नेता अपने-अपने परिग्रह की सीमा कर लें तो देश में गरीबी समाप्त हो सकती है।।16।।

- **परिग्गह-परिमाणधारगस्स अणुव्वदिस्स अदिवाहणं ण कादव्वं। उसहादि-पसवो जावदियं मग्गं सुहेण उत्तारेंति, तादो अहिग-मग्गे जदि कोवि ता गामेदि दु तस्स इमा किरिया अदिवाहणं ति॥17॥**

  परिग्रह परिमाणधारी अणुव्रती के लिए अतिवाहन नहीं करना चाहिए। बैल आदि पशु जितने मार्ग को सुख से पार कर सकते हैं, इससे अधिक मार्ग पर यदि कोई उन्हें चलाता है तो उसकी यह क्रिया अतिवाहन कहलाती है।।17।।

- **धण्णादिगा पुरो अहिगलाभं देहिदि इदि भावो अदिसंग्गहो। इमस्स लोहस्स वसादो कोवि तस्स अच्चाहिगसंगहं करेदि दु तस्स इदं कज्जं अदिसंगहादिचारो त्ति॥18॥**

  अति संग्रह यानी धान्यादिक आगे चलकर अधिक लाभ देगा—इस लोभ के वश से कोई उसका अत्यधिक संग्रह करता है तो उसका यह कार्य अतिसंग्रह नाम का अतिचार है।।18।।

- **विसिट्ठलाहे सदि वि अहिगलाहेच्छादो कोवि अहिग-लाहं करेदि दु तस्स अदिलोहादिचारो त्थि॥19॥**

  अति लोभ-विशिष्ट लाभ मिलने पर भी अधिक लाभ की इच्छा से कोई अधिक लोभ करता है, तो उसका अतिलोभ नाम का अतिचार है।।19।।

- **लोहावेसे अहिगभारारोवणं अदिभारारोवण-दोसो। अहवा सीमादो अहिगकज्जभारधारणं पि अदिभारारोवणं चेदि॥20॥**

  अति भारारोपण-लोभ के आवेश में अधिक भार लादना अति-भारारोपण नाम

का दोष है। अथवा सीमा से ज्यादा कार्यभार धारण करना यह भी अति भारारोपण समझो।।20।।

- **परदव्व-संचए ण कदावि सुहं हवीअ, णेव होहिदि। अदो सचदुट्ठयो हि अमुल्लधणं। तस्सेव लद्धीए णियुज्जमं कुण, तदेव तुज्झ कल्लाणं होहिदि॥21॥**

पर-द्रव्य के संचय में न सुख हुआ, न कभी होगा। अतः स्व चतुष्टय ही अमूल्य धन है। उसी की प्राप्ति में निज का पुरुषार्थ कर, तभी तेरा कल्याण होगा।।21।।

- **संगहीदवत्थुं वट्टमाणभावेण विक्कयणे कस्सचिद मुल्लं पि अगहणं तहा अवरस्स थंभिय विक्कयणे तं अहिगलाहो जादो, इह ठिदीए लोहावेसादो अदिविम्हयं खेदं च करेदि। अयं अदिविम्हयादिचारो त्ति॥22॥**

अतिविस्मय-संग्रहीत वस्तु को वर्तमान भाव से बेच देने पर किसी का मूल्य भी वसूल नहीं हुआ और दूसरे को ठहर कर बेचने पर उसे अधिक लाभ हुआ, इस स्थिति में लोभ के आवेश से अतिविस्मय या खेद करता है। यह अतिविस्मय नामक अतिचार है।।22।।

- **हे अप्पा! जं तुज्झ अत्थि, तं तुमं ण दिस्सेदि तहा जं दिस्सेदि तं तुज्झ णत्थि। तुं कत्तो रागद्दोसं च करेदि? जं अण्णं तं अण्णमेव होहिदि, तं कदावि णियभूदं ण हवीअ, पुणो किमु परिग्गह-संचयो?॥23॥**

हे आत्मन् ! जो तेरा है वह तुझे दिख नहीं रहा है और जो दिख रहा है वह तेरा नहीं है। तू किससे राग-द्वेष कर रहा है? जो पर है वह पर ही रहेगा, वह कभी निज नहीं हुआ, तो फिर परिग्रह का संचय क्यों?।।23।।

- **णिय-वेहवं कदावि तुमत्तो दूरं ण हवीअ, णं णियवेहवं तुमं अज्जपज्जंतं ण जाणेहि। णियवेहवं अणवगमणेणं हि अज्जपज्जंतं तुमं णियविभूदि-लद्धि-उज्जमं ण कुणीअ॥24॥**

  निज वैभव कभी तेरे से दूर हुआ नहीं, पर निज वैभव को तूने आज तक नहीं जाना। निज वैभव को न जानने के कारण ही आज तक तूने निज विभूति की प्राप्ति का पुरुषार्थ नहीं किया।।24।।

- **हे पण्ण! तुमं एगो, णिच्छएण सुद्धो परमप्पा, दंसण-णाणमयो त्थि, णं पुग्गलसंजोगादो पुहं सरूवो त्थि। इहलोए परदव्वं किंचिमेत्तं पि तुज्झ णत्थि। पुणो तुं किमु ताणि सगीयभूदाणि मण्णेसि॥25॥**

  हे प्रज्ञ! तू एक है, निश्चय से शुद्ध, परमात्मा, दर्शन-ज्ञानमय है, परन्तु पुद्गल के संयोग से पृथक् स्वरूप है। इस लोक में परद्रव्य लेशमात्र भी तेरा नहीं है। फिर तू क्यों उन्हें अपना मान रहा है?।।25।।

- **हे विण्णप्पा! जस्स मदी अण्णाण-मोहिदा, सो हि मूढो परदव्वं सगीयभूदं मण्णेदि। तस्स मण्णत्तं मिच्छा॥26॥**

  हे विज्ञात्मन् ! जिसकी मति अज्ञान से मोहित है, वही मूढ़ परद्रव्य को अपना मानता है। उसकी मान्यता मिथ्या है।।26।।

- **रागदिट्ठी हु परिग्गह-दिट्ठी॥27॥**

  राग-दृष्टि ही परिग्रह दृष्टि है।।27।।

- **भो मणीसी अप्पा! तुं सगीय-णियधुव-चेयण्णदव्वं आसएहि, एवमेव अज्झप्पं॥28॥**

  भो मनीषी आत्मन् ! तू अपने निज ध्रुव चैतन्य द्रव्य का आश्रय कर, यही अध्यात्म है।।28।।

- **भो विण्ण! सचित्ताचित्तमिस्स-दव्वे सगचित्तं जुंजेदूणं णियचारित्तं-हणणं किमु कुणेसि?॥29॥**

  भो विज्ञ! सचित्त, अचित्त, मिश्र द्रव्य में अपने चित्त को लगाकर निज चारित्र का हनन क्यों कर रहा है?।।29।।

- **परदव्वेण इमेण जीवेण कदावि ण भणिदं- एदे मज्झं, इमस्स हं म्हि। तं तु मज्झत्थवित्तिं धारेदि। णं धिगत्थु इमं मोहीजीवं जो अचेदण-दव्वेहिं आदव्वं खएदि॥30॥**

  परद्रव्य ने इस जीव से कभी नहीं कहा कि ये मेरे हैं व मैं इनका हूँ। वह तो मध्यस्थ-वृद्धि को धारण किये है। पर धिक् ! इस मोही प्राणी को जो जड़/अचेतन द्रव्यों के पीछे आत्म-द्रव्य को खो रहा है।।30।।

- **मेत्तं सुद्धसहावी चेयण्णधम्मो हि उवादेयभूदो॥31॥**

  एकमात्र शुद्ध-स्वभावी चैतन्य-धर्म ही उपादेयभूत है ।।31।।

- **परदव्वं जदिवि छिज्जदु वा कोवि णेदु वा णस्सेदु, जेण वि गच्छेदु, पुणो वि णिच्छएण परदव्वं मे सहावो णत्थि॥32॥**

  पर द्रव्य चाहे छिद जाए अथवा कोई ले जाए या नष्ट हो जाए, जिस भी प्रकार से चला जाए, तो भी निश्चय से परद्रव्य मेरा स्वभाव नहीं है।।32।।

- **णिच्छण ममत्तभावो हि परिग्गहो॥33॥**

  निश्चय से ममत्व-परिणाम ही परिग्रह है।।33।।

- **ममत्तभावेण विणा धणधण्णसंगहं णवि कीरदे। जत्थ दव्व-संगहो तत्थ णियमेण परिग्गहो। परदव्व-सब्भावे सदि कोवि सगीयं णिप्परिग्गही भासे, तं पुण्णं असच्चं॥34॥**

  बिना ममत्व-भाव के धन-धान्य का संग्रह नहीं किया जा सकता है। जहाँ पर द्रव्य

का संग्रह है, वहाँ नियम से परिग्रह है। परद्रव्य के सद्भाव होने पर कोई अपने आपको निष्परिग्रही कहे, वह पूर्ण असत्य है ।।34।।

- **दव्वाभावे ममत्तं होदि वि तहा णत्थि वि होदि, णं जत्थ परदव्वसब्भावो तत्थ णियमेण परिग्गहरूवभावा होहिंति॥35॥**

  द्रव्य के अभाव में ममत्व होता भी है और नहीं भी होता, परन्तु जहाँ पर द्रव्य का सद्भाव होगा वहाँ नियम से परिग्रह रूप परिणाम होंगे ।।35।।

- **सव्वाहिग-पीडगो गेहो परिग्गहो, सो परिदो जीवा पीडेदि॥॥36॥**

  सर्वाधिक पीड़ा देने वाला यदि कोई ग्रह है तो वह परिग्रह है, जो चारों तरफ से जीवों को परेशान किए है ।।36।।

- **अयं लोगो दव्वाभावे दुही तहा दव्वसब्भावे वि दुही। णवरि अभावे दारिद्द-दुहं अणुहवेदि दु सब्भावे रक्खणचिंतं करेदि, 'कोवि ण हरेज्जा'। भूदत्थे सो हि सुही जो पुण्णरूवेण परिग्गहचागी ॥37॥**

  यह लोक द्रव्य के अभाव में दुःखी है और सद्भाव में भी दुखी है। कारण, अभाव में गरीबी का दुःख अनुभव करता है, तो सद्भाव में रक्षण की चिंता करता है कि कोई चुरा न ले जाए। सही मायनों में सुखी वही है जो परिग्रह का पूर्ण रूप से त्यागी है।।37।।

- **परिग्गहो तिविहो सचित्ताचित्तमिस्स भेददो त्ति॥**

  परिग्रह को तीन भागों में विभाजित किया गया है सचित्त, अचित्त और मिश्र।

- **मादु-पिदु-इत्थि-पुत्त-भिच्च-गय-अस्स-गो-इच्चादि-जुदं चित्तं सचित्त-परिग्गहो। एदे सचित्त-परिग्गहा गिहत्थावेक्खाए। साहु-अवेक्खाए सिस्स-सिस्सा-भत्तगणेसुं रागबुद्धी सचित्त-परिग्गहो त्ति॥**

1. माता-पिता, स्त्री, पुत्र, नौकर, हाथी, घोड़ा, गाय इत्यादि से जो चित्त से युक्त

होना सचित्त परिग्रह है। ये सचित्त-परिग्रह गृहस्थ-अपेक्षा कहे गए हैं। साधु की अपेक्षा शिष्य, शिष्याओं, भक्तगण में राग-बुद्धि सचित्त-परिग्रह है।

धणधण्ण-मुद्दा-गेह-आवणादि-चेयण्णरहिद-दव्वेसुं पुरिसरागो अचित्त-परिग्गहो त्ति।

2. धन, धान्य, मुद्राएँ, गृह, दुकान इत्यादि अर्थात् चैतन्य से रहित जितना द्रव्य है, उसमें जो पुरुष का राग है, वह उसके लिए सब अचित्त परिग्रह है।

इत्थि-पुत्तादिग-वत्थाभरणजुत्त-गिहत्थस्स मिस्स-परिग्गहो। णवरि पुत्तादि-सचित्ताणि, वत्थादि-अचित्ताणि उहयजुत्त-मिस्साणि॥

3. स्त्री, पुत्रादिक और वस्त्राभरण से युक्त गृहस्थ का मिश्र परिग्रह है। कारण, पुत्रादि सचित्त हैं, वस्त्रादि अचित्त हैं, दोनों से युक्त मिश्र है।

उत्त-तिविह-परिग्गहचागेण विणा आदधम्मलद्धी णवि हवेदि॥38॥

उक्त तीनों प्रकार के परिग्रह के त्याग किए बिना आत्मधर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती है।।38।।

- **दुह-असंति हेदू परिग्गहो॥39॥**
- परिग्रह दुःख और अशांति का हेतु है।।39।।

- **पंचमं पावं परिग्गहो। तेण जुदजीवं अज्जं वीसा पुण्णप्पा भासित्ता रावेंति। इमम्हि किं अच्छेरं? विभूदि-लद्धी पुव्वपुण्णफलं, णं विभूदी पुण्णं णत्थि॥40॥**
- परिग्रह पाँचवां पाप है। उससे युक्त प्राणी को आज लोग पुण्यात्मा कहकर पुकारते हैं। इसमें क्या आश्चर्य? विभूति की प्राप्ति पूर्व पुण्य का फल है, परन्तु विभूति पुण्य नहीं है।।40।।

- **बहु-आरंभ-परिग्गहत्तं च णरगाउ-कारणं, णं रागतिव्वत्तेण सह। रागाभावे परदव्वं बंधहेदू णत्थि। परदव्वं तु रागहेदू, तम्हा उवयारेण**

तं पि बंधहेदू उत्तं। णिच्छएण मुच्छा एव बंधकारणं, सा हु परिग्गहो।।41।।

बहुत आरंभ, बहुत परिग्रह नरकायु का कारण है, पर राग की तीव्रता के साथ। राग के अभाव में परद्रव्य बन्ध का हेतु नहीं है। परद्रव्य तो राग का हेतु है इसलिए उपचार से उसे भी बन्ध का हेतु कहा गया है। मूर्च्छा ही बन्ध का कारण है निश्चय से, वही परिग्रह है।।41।।

- **परिग्गहो विणा आरंभं ण होदि तहा जत्थ आरंभो तत्थ हिंसा णूणं होदि। एवं जत्थ मोहजणिद-अप्पीयभावा, तत्थ आरंभं विणा हि भावहिंसा। तम्हा दुविह-परिग्गह-गहणं हि हिंसा तहा तेसिं चागो हि अहिंसा।।42।।**

परिग्रह बिना आरंभ के नहीं रह सकता और जहाँ आरंभ है वहाँ हिंसा अवश्य होती है। इसके सिवा जहाँ मोह-जनित आत्मीय-भाव हैं, वहाँ बिना आरंभ के ही भाव-हिंसा है। इसलिए दोनों प्रकार के परिग्रह का ग्रहण करना ही हिंसा और उनका छोड़ना ही अहिंसा है।।42।।

- **जो सयल-आसाणं णिरागरेदूणं णिरासा-आलंबणं गेण्हेदि, तस्स मणो कदावि परिग्गह-कद्दमादो ण लुक्केदि।।43।।**

जो पुरुष समस्त आशाओं का निराकरण करके निराशा का आलम्बन लेता है, उसका मन किसी काल में भी परिग्रह रूपी कर्दम से नहीं छिपता।।43।।

- **इहलोए जेसिं मणो दुत्थर-आसा-णीरे ण मज्जेदि, तेसिं हु णाणरुक्खो फलेदि तहा अपरिग्गह-वदं णिरदिचारं आयरेदि।।44।।**

इस जगत में जिनका मन दुस्तर आशा रूपी जल में नहीं डूबता, उनके ही ज्ञान रूपी वृक्ष फलता है और अपरिग्रह व्रत निरतिचार आचरित होता है।।44।।

- **सग्ग-इंदो वि आसारूव-अग्गीदो जलंतो णत्थि सुही, पुणो सामण्ण जीवस्स किं वयणं?॥45॥**

  स्वर्ग का इन्द्र भी आशा रूपी अग्नि से जलता हुआ सुखी नहीं है, फिर सामान्य की बात ही क्या है?।।45।।

- **जहा णावे पासाणादिग-भार-वड्ढणादो गुणवंत-रज्जूदो बंधिद-णावो वि सायरे मज्जेदि, तहेव संजदसमणो जदि गुणवंतो पुणरवि परिग्गहभारेण संसारसायरे मज्जेदि॥46॥**

  जिस प्रकार नाव में पाषाणादिक का बोझ बढ़ने से गुणवान रस्सी से बंधी हुई नाव भी समुद्र में डूब जाती है, ठीक उसी प्रकार संयमी मुनि यदि गुणवान है तो भी परिग्रह के भार से संसार रूपी सागर में डूब जाता है।।46।।

- **जो बहिपरिग्गह-रहियो तहा ममत्तं करेदि, सो णो णिप्परिग्गही; णवरि मुच्छा हि परिग्गह-उप्पत्तिठाणं॥47॥**

  बाह्य परिग्रह से जो रहित हो और ममत्व करता हो वह निःपरिग्रही नहीं हो सकता; क्योंकि मूर्च्छा ही परिग्रह-उत्पत्ति का स्थान है।।47।।

- **सिद्धंते परिग्गहो सयल-अणत्थ-मूलं, णवरि जस्स सब्भावदो रागादिग-रिवू ण होंतु, पुणो वि खणमेत्ते जायंते॥48॥**

  सिद्धांत में परिग्रह को समस्त अनर्थों का मूल माना गया है, क्योंकि जिसके होने से रागादिक शत्रु न भी हों, तो भी क्षणमात्र में उत्पन्न हो जाते हैं।।48।।

- **इहलोए जीवाणं परिग्गहलाहादो गुणा दु अणुमेत्तं पि ण होंति, णं दोसा सुमेरू-पव्वदो व्व होंति॥49॥**

  इस लोक में जीवों के परिग्रह के प्राप्त होने से गुण तो अणुमात्र भी नहीं होते, किन्तु दोष सुमेरु पर्वत समान होते हैं।।49।।

- **परिग्गह-मोहिदस्स जीवस्स वेरग्ग-सच्च-खमा-सउच-तिण्हा-रहिदत्तादि-गुणा णस्संति॥50॥**

  परिग्रह से मोहित जीव के वैराग्य, सत्य, क्षमा, शौच और तृष्णा रहितपना आदि गुण नष्ट हो जाते हैं।।50।।

- **परिग्गहो सप्पुरिसाणं वेरग्ग-विवेग-रुक्खस्स मंजरीणं उम्मूलेदि॥51॥**

  परिग्रह सत्-पुरुषों के वैराग्य, विवेक रूपी वृक्ष की मंजरियों का उन्मूलन कर देता है।।51।।

- **अयं मणुस्सो परिग्गहेण पीडेदूणं विसयविसहरेहिं तु कट्टदे, कामसरेहि विकत्तदे तहा इत्थि-रूव-वाहीदो रुंभदे॥52॥**

  यह मनुष्य परिग्रह से पीड़ित होकर विषय रूपी सर्पों से तो काटा जाता है, काम के बाणों से चीरा जाता है और स्त्री रूपी व्याधि से रोका जाता है।।52।।

- **जो परिग्गह-कद्दमे लिप्पंतो वि मोक्ख-लद्धीए चेट्ठं करेदि, सो मूढो पुप्फ-सरेण मेरू-पव्वद-भंजणं इच्छेदि॥53॥**

  जो प्राणी परिग्रह रूपी कीचड़ में फंसा हुआ भी मोक्ष प्राप्ति के लिए चेष्टा करता है, वह मूढ़ फूलों के बाण से मेरू पर्वत को तोड़ना चाहता है।।53।।

- **परिग्गहजुत्तस्स ण होदि णिव्वियप्प-झाणं। तस्स अभावे णवि होदि णिव्वाणं चेव॥54॥**

  परिग्रहधारी को निर्विकल्प ध्यान नहीं हो सकता। इसके अभाव में निर्वाण भी नहीं होता।।54।।

- **अणुमेत्त-परिग्गहादो मोहकम्म-गंथी दिढा होदि, जेण एरिसा तिण्हावड्ढी होदि जाए संतीए सयललोयरज्जं पि अपुण्णं॥55॥**

  अणु-मात्र परिग्रह के रखने से मोहकर्म ग्रन्थि (गाँठ) दृढ़ होती है, जिससे तृष्णा की ऐसी वृद्धि हो जाती है कि जिसकी शांति के लिए समस्त लोक का राज्य भी पूरा नहीं पड़ता।।55।।

- **सयल-परिग्गहस्स णवकोडीदो चागी हि महव्वदि-समणो त्ति॥56॥**

  समस्त परिग्रह का नव कोटि से त्यागी ही महाव्रती साधु कहलाता है।।56।।

- **एगदेस-परिग्गह-परिमाणेण णिरत्थग-असंतिभावो णस्सेदि॥57॥**

  एक-देश परिग्रह का परिमाण कर ले तो व्यर्थ अशांति समाप्त हो सकती है।।57।।

- **हे पण्ण! दव्वं तावदियं हि लहेहिदि, जावदियं तुज्झ पुण्णे त्थि। पुणो किमु विहा हद्धि-हद्धि करेदि। धम्मं कुणेहि, धम्मेण हि सयल-संपदाओ आवज्जंति॥58॥**

  हे प्रज्ञ! द्रव्य उतना ही तो मिलेगा जितना तेरे भाग्य में है। फिर क्यों व्यर्थ की हाय-हाय करता है। धर्म कर, धर्म से ही सभी सम्पदाएँ उपलब्ध होती है।।58।।

अणुवादग-पसत्थी

अणादिणिहण—कम्मसिद्धंतभासग—सणादण—दियंबर—जेण—समण—सक्किदीए पढमतित्थेसो आदिसंकरो पहु—उसहदेवो इह काले सव्वप्पढमो सच्चत्थ-मग्गदरिसग-अरहंतो जादो। तित्थयरेसुं आदिच्चो व्व पयासमाणो जसस्सी चरमतित्थेसो अम्मेहिं सह वीसस्स कुलदेवदा, अहिंसा-णीदि-बोहस्स बोहगो देवाधिदेवो महावीरसामी जादो। वट्टमाण-सासण-णायगस्स वड्ढमाण-सामिस्स मोक्खगमणोवरंतं णाणा-केवली-सुदकेवली-सुदण्हु-भयवंता वि जादा। पुणो पंचमयाले सगपर-विसोहि-रक्खगो पागिदभासाए अज्जकई दियंबराइरिय-कुंदकुंद-सामी जादो।

एवमेव जिणसासण-रक्खग-पहावग-संवड्ढग-समणपरंपराए घोर-तवस्सी-समणेसुं पहाणो वीसप्पसिद्धो पढम-समणाइरियो पूदपरंपराए वणवासी, मुणिकुंजर-आदिसागर-अंकलीयरो जादो। तस्सेव पढमसिस्सो पट्टाइरियो जंत-मंत-तंत-गूढणाओ, णाणसिरोमणी, अट्ठारस-भासा-विदू, सुद्ध-विसुद्ध-आयारगो, जिद-उवसग्ग-परीसहो, सव्वजणहिदू, आइरिय-महावीरकित्ती जादो।

तस्स पढमसिस्सो णिमित्तणाण-सिरोमणी, वच्छल्लदिवायरो, सव्वजणो-द्धारगो, मंताणं गूढणादा-पओत्ता, वाणीसिद्धो, विमलमणो आइरिय-विमल-सायरो समणराओ जादो। तस्स सिस्सो जिद-उवसग्गो, सिद्धंत-चक्कवट्टी, चारित्त-सिरोमणी, रयणत्तयवड्ढिणी-पहुदि-अणेग-सक्किद-टीगाकत्ता, विसाल-चदुव्विह-संघणायगो, अप्पाणुसासिदो, अणुसासणप्पियो, गुरुगणी-पद-पदाया, महम्हि सदा सगीय-वरदहत्थ-वहमाणो, विरागमणो गणाइरिय-विरागसागरो समणेसो जादो।

तस्स पियग्ग-पढमसिस्सो, चरिया-सिरोमणी, सदद्दी-देसणाइरियो, सक्किदि-सासणाइरियो, सज्झाय-संवड्ढगो, सुत्तत्थ-विसारदो, सिद्धंत-अज्झप्प-णयणायादि-विज्जा-पवीणो सच्चत्थबोहादि-दुसयाहिग-गंथकत्तारो, विसाल-णिग्गंथ-समणसंघणायगो दुसयाहिग-पंचकल्लाणग-पदिट्ठाकारगो, विसुद्धमणो, मम दिक्खा-सिक्खागुरू समणाइरियो पट्टाइरियो सिरिविसुद्धसागरो जादो।

तस्सेव पीदिपत्त-पागिदविज्जाविसणी-सुदसंवेगी-अप्पाहारी-बहुपरिस्समी-आदिविज्जाथुदि-आदकित्तणादि-दुसय-सक्किद-पागिद-अवब्भंस-हिंदी-गंथकत्ता-सिद्धहत्थ-वीसविक्खाद-सुदपुत्त-पागदमत्तंड समणादिच्चसागरेण अस्स पंचसील-सिद्धंत-गंथस्स अणुवादं किदं।

अस्स गंथस्स मूलकत्ता आइरिय-गुरुदेवो विसुद्धसागरो एव अत्थि। अस्स गंथस्स मंगलाचरणं मंगलारंभं च वी.णि. 2551 पोस-मासे किण्हपक्खे दहमीए चित्ताणक्खत्ते बुधवारे अदिगंडजोगे पहुसीयलणाह-चरण-णिस्साए विदिसाणयरे मज्झप्पएसे मज्झाणे मए किदं।

पुणो पंचकल्लाणपदिट्ठादि-कारणादो लेहणीए विरामं दिंतीअ। पुणो य वी.णि. 2551 माघमासे सुक्कपक्खे तिदीया-तिहीए गंथाणुवादं मए आरंभिदं। भोवाल-णयरे हि मज्झप्पएसे माघमासे सुक्कपक्खे णवमीए गुरुवारे किदिगा-णक्खत्ते बंभजोगे देवाहिदेव-अजिदणाहसामिस्स तवकल्लाणे रायगीय-परिसरे विहाणसहाए समण-पमाणसागरस्स सण्णिहीए इदं गंथं मए संपुण्णं किदं।

छंदावेक्खाए 511 सिलोगपमाणो सुत्तावेक्खाए 355 सुत्तपमाणो अयं पंचसील-सिद्धंतगंथो धम्म-पुण्ण-सील-सच्च-चागरूवो त्थि। अयं गंथो पढणीयो रक्खणीयो पगासणीयो वा अत्थि। अस्स गंथस्स पढण-पाढणादो वा धिज्ज-धम्म-वद-वड्ढी होदि तहा पाव-दुक्ख-संकिलेसत्त-हाणी वा होदि।

।। णमो णमो सिद्ध-साहूणं ।।

अनुवादक की प्रशस्ती

अनादिनिधन कर्मसिद्धान्त को बतानेवाली सनातन दिगंबर जैन श्रमण संस्कृति में प्रथमतीर्थेश आदिशंकर भगवान् वृषभदेव इस काल में सर्वप्रथम सत्यार्थ मार्गदर्शक अरहंत हुये। तीर्थंकरों में आदित्यवत् प्रकाशमान यशस्वी अंतिम-तीर्थेश हम सब के साथ विश्व के कुलदेवता, अहिंसा और नीति का बोध करानेवाले भगवान् महावीर स्वामी हुये। वर्तमान के शासननायक वर्धमानस्वामी के मोक्षगमन के उपरान्त अनेकों केवली, श्रुतकेवली और श्रुतज्ञ भगवंत भी हुये। पुनः पंचमकाल में स्वपर-विशुद्धि के रक्षक, प्राकृत भाषा के आद्यकवि दिगंबराचार्य कुंदकुंदस्वामी का उद्भव हुआ।

इसी जिनशासन-रक्षक, प्रभावक, संवर्धक श्रमण परंपरा में घोरतपस्या करनेवाले श्रमणों में प्रधान, विश्व-प्रसिद्ध, प्रथम श्रमणाचार्य, पूतपरंपरा में वनवासी, मुनिकुंजर श्री आदिसागर जी अंकलीकर हुये। उनके ही प्रथम शिष्य, पट्टाचार्य यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र के गूढ़ ज्ञाता, ज्ञान-शिरोमणि, अट्ठारह-भाषाविद्, शुद्ध-विशुद्धाचारक, उपसर्ग-परीषह-जेता, सर्वजनहितकारक आचार्य भगवन् महावीरकीर्ति जी हुये। जिनकी कीर्ति आज भी विश्व में सुवासित है।

उनके प्रथम शिष्य निमित्तज्ञान-शिरोमणि, वात्सल्य-दिवाकर, सर्वजनोद्धारक, मन्त्रों के गूढ़ज्ञाता और प्रयोक्ता, वाणीसिद्ध, विमलमनः आचार्य श्री विमलसागर जी श्रमणराज हुये। उनके शिष्य उपसर्ग विजेता, सिद्धान्त-चक्रवर्ती, चारित्र-शिरोमणि, रत्नत्रयवर्धिनी आदि अनेकों संस्कृत-टीका ग्रंथों के कर्त्ता, विशालचतुर्विध संघनायक, आत्मानुशासित, अनुशासनप्रिय, गुरुगणीपद प्रदाता, मुझ पर सदा अपना वरदहस्त रखनेवाले विरागमनः गणाचार्य श्री विरागसागर जी श्रमणेश हुये।

उनके प्रियाग्र प्रथम शिष्य, चर्याशिरोमणि, शताब्दी-देशनाचार्य, संस्कृति-शासनाचार्य, स्वाध्याय-संवर्धक, सूत्रार्थ-विशारद, सिद्धान्त-अध्यात्म-नयन्यायादि-विद्याप्रवीण, सत्यार्थ-बोधादि 200 से अधिक ग्रन्थों के सृजेता, विशाल-निर्ग्रन्थ श्रमण संघनायक, 200 से अधिक पंचकल्याणक प्रतिष्ठाकर्ता, विशुद्धमनः मम दीक्षा-शिक्षा गुरु श्रमणाचार्य पट्टाचार्य भगवन् श्री विशुद्धसागर जी हुये।

उनके ही प्रीतिपात्र, विद्याव्यसनी, श्रुतसंवेगी, अल्पाहारी, बहुपरिश्रमी, आदिविद्या-स्तुति-आत्मकीर्तनादि 200 संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी आदि ग्रंथों के कर्ता, सिद्धहस्त, विश्वविख्यात, श्रुतपुत्र, प्राकृतमार्तंड श्रमण श्री आदित्यसागरजी ने इस पंचशील-सिद्धान्त ग्रंथ का अनुवाद किया।

इस ग्रंथ के मूलकर्ता आचार्य गुरुदेव भगवन् विशुद्धसागर जी ही हैं। इस मंगल ग्रंथ का मंगलाचरण एवं मंगलारंभ वीर निर्वाण 2551 पौष मास, कृष्णपक्ष, दशमी तिथि, चित्रा नक्षत्र, बुधवार, अतिगंड योग में प्रभु शीतलनाथ स्वामी की चरण निश्रा में विदिशानगर में मध्यप्रदेश में मध्याह्नकाल में मेरे द्वारा किया गया।

पुनः पंचकल्याणक प्रतिष्ठादि कार्यों के निमित्त से लेखनी के लिये विराम दिया। पुनश्च वीर निर्वाण 2551 में ही माघमास, शुक्लपक्ष, तृतीया में मैंने ग्रंथानुवाद का शुभारंभ किया। मध्यप्रदेश भोपाल में ही माघमास, शुक्लपक्ष, नवमी तिथि, गुरुवार, कृतिका नक्षत्र, ब्रह्मयोग में देवाधिदेव अजितनाथ स्वामी के तपकल्याण के दिवस में राजकीय-परिसर विधानसभा में गुणायतन तीर्थ प्रणेता श्रमण प्रमाणसागर की सन्निधि में मैंने इस ग्रंथ को संपूर्ण किया।

छंदापेक्षा 511 श्लोकप्रमाण अथवा सूत्रापेक्षा 355 सूत्रप्रमाण यह ग्रन्थ पंचशील-सिद्धान्त धर्म, पुण्य, शील, सत्य और त्याग रूप है। यह ग्रंथ पठनीय है, रक्षणीय है, प्रकाशनीय भी है। इस ग्रन्थ के पठन-पाठन से धैर्य, धर्म और व्रत की वृद्धि तथा पाप, दुःख और संक्लेशता की हानि होती है।।

।। सिद्ध-साधुओं के लिये नमस्कार हो ।।